



श्री बल्लभ स्मारक ग्रंथमाला-२ —

निगंठ नायपुत्त

श्रमण भगवान् महावीर

तथा

मांसाहार परिहार

श्री रामचंद्र मज्जनिका  
लेखक लक्ष्मी रामाधि माटे  
व्यावर लेट.

११-१०-१०-३३

श्रमण

पंडित होरालाल दूगड़ जैन

भाष्य

आगत-प्रभाकर-मुनि श्री पुण्यविजयजी

प्रकाशक :—

श्री आत्मानन्द जैन महासभा पंजाब  
मुख्य कार्यालय—अम्बाला शहर (पंजाब)

(सर्वाधिकार प्रकाशक द्वारा सुरक्षित)

वीरनिर्वाण संवत् २४९०  
प्रथमावृत्ति १०००

ईस्वी सन् १९६४  
मूल्य—एक रुपया

मुद्रक :  
शान्तिशाल जैन  
श्री जैनेन्द्र प्रेम, बंगला रोड,  
जवाहर नगर, दिल्ली-६ ।

श्री विष्णु देवदास जी महाराज  
 ॥ श्री गुरुदेव जय हेतु ॥  
 श्री विष्णुदेवदास जी, मुम्बई-३.



जिन्होंने साधु से कठोर द्रवों का पालन करने हुए भी  
 मोक्षार्थ के बहुत काम किये और अहिंसा के मूल तत्त्वों को  
 मानव जीवन में प्रतिष्ठित करने के लिये बहुत प्रयत्न किया,  
 न अज्ञान-विमल-विराजित कलियुग पुरुष श्री श्री १००८  
 ॥ जेनाचार्य श्री विष्णुदेवदास गुरुदेव की पवित्र स्मृति में

## प्राक्कथन

कभी-कभी विद्वान् माने जाने वाले व्यक्ति भी कुछ ऐसे विचार व्यक्त कर डालते हैं जो सत्य तथा औचित्य की दृष्टि से सर्वथा अग्राह्य होते हैं। ऐसे असत्य तथा अनुपयुक्त विचारों की उत्पत्ति और अभिव्यक्ति का कारण चाहे कदाग्रह हो अथवा संवद्ध विषय की यथोचित जानकारी का अभाव, परंतु ऐसे विचार विपैला प्रभाव डालते हैं और उनका निराकरण आवश्यक बन जाता है।

श्री घर्मानंद कौशाम्बीजी ने अपनी पुस्तक 'भगवान् बुद्ध' में श्रमण-शिरोमणि, अहिंसा के अनन्य उपासक तथा प्रसारक, भगवान् महावीर पर रोगनिवृत्ति के लिए मांसभक्षण का आरोप लगाया है। सर्वप्रमुख जैनाग्रामों में गिने जाने वाले श्री भगवती सूत्र के एक सूत्र को उन्होंने आधार बनाया है।

भगवान् ने अपने एक मुनि शिष्य श्री सिंह को कहा कि "तुम मेढिक नगर में सेठ गृहपति की भार्या रेवती के घर जाओ और उनसे 'मज्जार कडण कुकुडमण' (औषध रूप) ले आओ जो उन्होंने अपने लिए बना रखा है।" भगवान् वचन में प्रयुक्त इन शब्दों का 'बिल्ले द्वारा मारे गए मुर्गे का मांस' ऐसा अगम्य और अमभाव्य अर्थ करके कौशाम्बीजी ने अनर्थ किया है।

हर भाषा में अनेकार्थ शब्द रहते हैं। दो शब्दों से मिलकर बने हुए शब्दों का अर्थ भी बहुत बार उन दोनों शब्दों के अर्थों से सर्वथा भिन्न होता है। संस्कृत तथा प्राकृत भाषा में तो विशेषतया अनेकार्थता पाई जाती है। इसलिए विवेकशील विद्वान् किसी भी ग्रंथ में प्रयुक्त शब्दों का अर्थ या उसकी व्याख्या करते हुए उस बात का ध्यान रखेंगे कि जिस व्यक्ति ने, किससे, किस समय, किस परिस्थिति में, किस निमित्त में, किस प्रसंग पर और किससे संबंध में वह शब्द कहे।

कानून (विधि Statute Law) में प्रचलन करने का अर्थ तथा इनकी व्याख्या करने में प्रमत्त, प्रकरण और उद्देश्य आदि का पूरा ध्यान रखना पड़ता है यह निर्देश सर्वोच्च न्यायालयों में बार-बार किया है। नैतिकता के इस पक्षित सूत्र की व्याख्या करने में उपर्युक्त सिद्धान्तों का ठीक-ठीक भी ध्यान नहीमाफीओं ने तब हीं रखा जो वह ऐसा दुर्घट अवस्था रिक्त अर्थ न करने। देना है :—

भगवान् मातापिता—यस अधिका के परमोपासक, इनके जीवन की समस्त साध ही सर्वोपयोग अधिका व सर्वभूषण बनायी;

श्री मित्र भुवि—संपूर्ण अधिकांश सब मायायन के चारक निर्धन भ्रमन जो जितों भी प्राप्ति को मन-बल-रक्षा में बन्ध देना भी पाप समझी है। जितों नवित्त सन्तु का प्रयोग भी नहीं करने,

मेवही मेरुनी—समस्तोत्तमिना आदिना समे को मायकानों में पावने वाली, साक्षात् औपमान में चोरीकर मोन उपासन करने का भी,

विशेषेण मे प्रत्यक्ष रोम—सर्वकाल, विद्यमान, आत-वत्त यत्नविमल विनये किन्तु मुने का मान महा आत्म और सर्वेषा अनुभवक,

प्रयत्न राय—यसमन्त्रि विमोह मे निविमल सूत्रक और इनके भेदान की दृष्टि सीमा उक्त दोनों के किन्तु मायकान।

अधिका अधिष्टान्तों मे विमल करने पर स्पष्ट है कि नैतिकता की मे उद्देश्य, प्रकाश की है।

कई विद्वानों मे अपने-अपने रूप मे नैतिकता की चोरी करने का विचार किया करने का समझा जाता है। यह भी नैतिकता की दृष्टि मे पूरे मायकों के समझ मे भी इस विचार पर मायकों मे अत्यन्त कम समझ किया है और सभी अर्थ को ही दृष्टि मे लाए करने का समझ समझ किया है। कई विद्वानों मे इनके इस मत-मन्य विद्वान्ताओं मेरा को समझा है। इतिहास भी अत्यन्त ही प्रकाश मे इसे दृष्टि रूप मे प्रकाश करने का विचार किया और सभी नैतिकता की प्रकाश प्रकाश की समझा करने का विचार किया। यह दृष्टि पर कई अर्थ दृष्टि की भी नैतिकता

की पुण्यभूमि में महासभा की ओर से पंडितजी को भेंट करने का मुझे श्रेय प्राप्त हुआ था और उनके इस ग्लाघ्य प्रयास की सराहना उस अवसर पर भी मैंने की थी ।

उनके लेख को पुस्तक रूप में विद्वानों के निष्पक्ष भाव ने अवलोकन के लिए भेंट करने और इस चर्चित विषय की बहुमुखी व्याख्या और विशदीकरण के इस अमूल्य प्रयत्न को उनके समक्ष रखने में महासभा हर्ष अनुभव करती है । हमें आशा है कि इसका अध्ययन करके सभी विवेकशील विद्वानों को संतुष्टि प्राप्त होगी ।

एम-१२८, कनाट स्कॉस,

नई दिल्ली-१

दिनांक १०-५-६४

विनीत

ज्ञानदास जैन, ऐडवोकेट

## ग्राम्य

प्रस्तुत पुस्तक में तीन अलग-अलग धर्मों के आचार का—विशेष तब आधुनिक आचार का मुद्रा वर्णन किया गया है, और इस आचार के साथ साथ, मंदिर आदि के संस्कार का वर्णन भी किया गया है, ये संस्कार वर्णन हैं— वेदा श्रौतमयन किया गया है । इस आधुनिक आचार के प्रतिष्ठान्तक भवत्वात् महावीर की जीवननयी का संस्कार के विधान भी कर दिया है, का प्रमाण कि—उन्होंने स्वयं श्रौतमय की प्रतिष्ठान्त करने जीवन में किसे प्रचार की थी ? यह जानकर स्वयं महा प्रमाण भी करने अतिशय उत्तर में अत्यन्त ही और श्रौतमय के पालन में कष्टमान की प्रेरणा भी भवत्वात् के जीवन में ही करने । यह पुनः प्रमाण भवत्वात् महावीर न आत्मो में साथ और अनेक करने का किसे प्रचार विशेष किया है और करनेवाले की वंशो पुनर्निर्माण है—इसके वर्णन में है । इसमें आत्मो में अनेक पाठों के निर्माण अत्यन्त देकर यह निश्चित किया है कि स्वयं भवत्वात् महावीर में साथ आदि के संस्कार का किसे प्रचार विशेष किया है ।

अब पुनः प्रश्न सामने है कि—यदि वास्तविकता यह है तो आत्मो का पुनः प्रमाण के रूप में आत्ममयन माननीय पाठ आदि है । इसकी भवत्वात् महावीर के स्वयं श्रौतमय के पालन में किसे प्रचार प्रमाण है ? आदि में महा प्रमाण वर्णन में भी पाठों का निर्माण जीवननयी के संस्कार का और आदि के आधुनिक मुद्रा के भी कई प्रमाणों में इस और तीन विधानों का वर्णन किया गया है । यह प्रमाण वर्णन विशेषतः यह प्रमाण है कि आदि प्रमाण वर्णन में है कि—तीन प्रमाणों के प्रतिष्ठान्त संस्कार प्रमाण है, और इस का प्रमाण है कि—अनेक प्रमाणवर्णन प्रमाण इस पाठों की अनेक वर्णन आत्ममयन का प्रतिष्ठान्त प्रमाण, नहीं में कर दे । यह प्रमाण वर्णन आदि है वेने पुनर्निर्माण में भी की ।



और अहिंसा के परम उपासक के जीवन में मांसाशन का मेल बैठ ही नहीं सकता है यह हमारी धारणा जैसे आज है वैसे प्राचीनकाल में भी थी। यह भी एक प्रश्न बारबार सामने आता है कि जिस प्रकार भगवान् बुद्ध ने मांस खाया यदि उसी प्रकार भगवान् महावीर ने भी खाया तथा जिस प्रकार आज बुद्ध के अनुयायी मांसाशन करते हैं उस प्रकार कभी-कभी जैन श्रमणों ने और गृहस्थों ने भी किया, तो अहिंसा के आचार में भगवान् महावीर और उनके अनुयायी की इतरजनों से क्या विशेषता रही ? ये और ऐसे अनेक प्रश्न अहिंसा में सम्पूर्ण निष्ठा रखने वालों के सामने आते हैं। अतएव उनका कालानुसारी समाधान जरूरी है। पूर्वाचार्यों ने तो उन-उन पाठों में उन शब्दों का वनस्पतिपरक अर्थ भी होता है ऐसा कहकर छुट्टी ले ली, किन्तु इससे पूरा समाधान किसी के मन में होता नहीं और प्रश्न बना ही रहता है। आधुनिक काल में जब त्याग की अपेक्षा भोग की ओर ही सहज झुकाव होता है, तब ऐसे पाठ मानव-मन को अहिंसा निष्ठा में विचलित कर दें और वह त्याग की अपेक्षा भोग का मार्ग ले; यह होना स्वाभाविक है। इस दृष्टि में उन पाठों का पुनर्विचार होना जरूरी है, ऐसा समझकर लेखक ने जो यह प्रयत्न किया है वह सगहनीय और विचारणीय है।

लेखक ने विविध प्रमाण देकर भगवत्क प्रयत्न किया है कि—उन सभी पाठों में मांस का कोई सम्बन्ध ही नहीं है। अनेक कोप और शास्त्रों से यह सिद्ध किया है कि उन शब्दों का वनस्पतिपरक अर्थ किस प्रकार होता है। इसे पढ़कर अस्थिर चिन्तकों की अहिंसा निष्ठा दृढ़ होगी—इसमें संदेह नहीं है, और आक्षेप करनेवालों के लिए भी नयी सामग्री उपस्थित की गई है, जो उनके विचार को बदल भी सकती है। इस दृष्टि से लेखक ने महत् पुण्य की कमाई की है और एतदर्थ हम सभी अहिंसा निष्ठा रखनेवालों के वे धन्यवाद के पात्र हैं।

—मुनि पुण्यविजय



की सभाओं ने भी इस पुस्तक के विरोध में प्रस्ताव पास कर योग्य अवि-  
कारियों को भेजे ।

इस आन्दोलन का परिणाम मात्र इतना ही हुआ कि “उक्त पुस्तक  
द्वारा न छपवाने का तथा इन प्रकाशित संस्करणों में मांस सम्बन्धी  
प्रकरण के साथ जैन विद्वानों के मान्य अर्थ को सूचित करनेवाला नोट  
लगवा देने का अकादमी ने स्वीकार किया परन्तु खेद का विषय यह है कि  
इस पुस्तक का ग्यारह भाषाओं में सर्वव्यापक प्रचार बराबर आज भी  
चाहूँ है ।

भारत एक धर्म-प्रधान देश है, मात्र इतना ही नहीं, अपितु सत्य और  
अहिंसा की जन्म-भूमि है । इसी धर्म वसुधैवा कुटुम्बेति पर भारत की सर्वोच्च  
विभूति महान् अहिंसक, कल्याण के प्रव्यक्ष अवतार, दीर्घ तपस्वी, महाश्रमण  
निर्ग्रन्थ तीर्थंकर ( निर्गुण नायपुत्र ) भगवान् महावीर स्वामी ( जैनों के  
चोवीसवें तीर्थंकर ) का जन्म हुआ । इसी पवित्र भारत भूमि में उन्होंने  
जगत् को सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह तथा स्याद्वाद आदि नतिमद्धान्तों को  
प्रदान किया । समस्त विश्व इस दान को स्वीकार करता है कि “श्रमण  
भगवान् वर्द्धमान महावीर तथा उनके अनुयायी निर्ग्रन्थ जैन श्रमण मनगा-  
वाचा-कर्मणा अहिंसा के प्रतिपालक थे और उनके अनुयायी श्रमण एवं  
श्रमणोपासक आज तक इसके प्रतिपालक हैं ।”

मेमा होने हुए भी ईस्वी सन् १८८४ में यानि आज से ८० वर्ष पहले जर्मन  
विद्वान् डाक्टर हर्मन जैसोवी ने जैनागम “आचारगम सूत्र” के अपने अनुवाद  
में सूत्रगत मांस आदि शब्दोंवाले उल्लेखों का जो अर्थ किया था उस पर  
विद्वानों ने पर्याप्त उदात्तता किया था । अनेक विद्वानों ने डाक्टर जैसोवी  
के मन्तव्यों के सत्य रूप पुष्टिकरण भी लिखी थी जिनके परिणामस्वरूप  
डाक्टर जैसोवी को अपना मत परिवर्तन करना पड़ा । उन्होंने अपने १८-२-  
१९०८ ईसवी के पत्र में अपनी भूल स्वीकार की । उस पत्र का उल्लेख  
‘हिन्दू आर्य वैतनिकल स्ट्रिक्चर आर जैनाज’ पृष्ठ ११३-११८ में  
होमरदाय रनिस्काय कार्पास्या ने इस प्रकार किया है :—



को संसार के समक्ष अयथार्थ रूप से प्रकट कर जो चर्चा उपस्थित की है उसका आज तक अन्त नहीं आया ।

यद्यपि अध्यापक कीशाम्बी पाली भाषा तथा बौद्ध साहित्य के प्रखर विद्वान् माने जाते थे परन्तु अर्द्ध मागधी भाषा के तथा जैन आचार-विचार के पूर्णज्ञाता न होने के कारण एवं गोपालदाम भाई पटेल भी इन विषयों में अनभिज्ञ होने के कारण (दोनों ने) जैनगमों के कथित सूत्रपाठों का गलत अर्थ लगाकर निम्नोक्त नायपुत्र श्रमण भगवान् महावीर तथा उनके अनुयायी निर्ग्रन्थ श्रमण मध पर प्राण्यंग मत्स्य मांसाहार का निर्मूल आक्षेप लगाया है । वास्तव में बात यह है कि जो भी कोई अहिंसा धर्म के अनन्य सम्स्थापक, प्रचारक, विद्वत्बल, जगद्-वन्द्य, दीर्घ तपस्वी, महाश्रमण भगवान् महावीर पर मांसाहार का दोषारोपण करता है, वह भगवान् महावीर को यथायोग्य नहीं समझ सका, उनके वास्तविक पवित्र जीवन को नहीं समझ पाया । वही कारण है कि ऐसे व्यक्ति ऐसा अप्रशस्त दुस्माहम कर ज्ञान-अज्ञान भाव में मांसाहार प्रचार का निमित्त बन जाते हैं । ऐसे निर्मूल आक्षेप का प्रतिवाद करना सत्य तथा अहिंसा के प्रेमियों के लिये अनिवार्य हो जाता है । इसी बात को लक्ष्य में रखते हुए कई विद्वानों ने इस प्रतिवाद रूप कुछ लेख तथा पुस्तिकाएँ लिखकर प्रकाशित कीं ।

किन्तु भी, त्रिजामुद्रों के लिये इस विषय में विशेष रूप से खोजपूर्ण लेख की आवश्यकता प्रतीत हो रही थी । अतः भारत के अनेक स्थानों ने मित्रों तथा विद्यार्थी वन्द्युओं ने अपने पत्रों द्वारा तथा माशात् रूप में मिलकर मुझे इस "भगवान् बृद्ध" के मांसाहार प्रकरण के प्रतिवाद रूप खोजपूर्ण, दार्शनिक पुस्तक, जैनशास्त्र-सम्मत तथा जैन आचार-विचार के अनुकूल निबन्ध लिखने की आप्रवर्तनी पुनःपुनः प्रेरणाएँ दीं । इन निम्नर की प्रेरणाओं ने मेरे मन में मृदुल इच्छाओं को बल प्रदान किया ।

विशेष रूप से श्री रमेशचन्द्रजी द्वागड जैन (पश्चिम पाकिस्तान में अपने हुए) कानपुर निवासी ने इस विषय पर कुछ नोट लिख भेजे और स्वयं प्रकट की कि इस विषय पर एक सुन्दर निबन्ध संसार किया जावे



अतः वे अपने जीवन में किसी भी हालत में अपने लिये अपवाद मार्ग का आश्रय नहीं लेते । इसका आशय यह है कि वे अपने जीवन में हिंसा आदि जिममें हो ऐसा कोई कार्य नहीं करते । अतः प्राण्यंग मांसादि को ग्रहण करना उनके लिये असंभव ही है इसलिये जैनों के पाँचवें आगम “भगवती सूत्र” के विवादास्पद सूत्रपाठ के शब्दों का प्राण्यंग मांसपरक अर्थ करना नितान्त अनुचित और गलत है तथा श्रमण भगवान् महावीर को जो रोग या जिनके लिये उन्होंने जिम औषध का सेवन किया था यदि वह प्राण्यंग मांस होता तो वह प्राणघातक मित्र होता । इसलिए उन्होंने वनस्पतियों से तैयार हुई औषध का सेवन कर आरोग्य लाभ किया । वह औषध :—

“लवंग से संस्कारित विजोरा ( जम्बीर ) फल का पाक” औषध रूप में ग्रहण किया था । क्योंकि इस औषध में रक्त-पित्त आदि रोगों को दमन करने के पूर्ण गुण विद्यमान हैं ।

ध्वेतावर जैनों द्वारा मान्य इस सूत्रपाठ का अर्थ वनस्पतिपरक औषध रूप में गुज दिगम्बर जैन विद्वानों ने भी स्वीकार किया है और इस औषध-दान की भृरि-भृरि प्रशंसा की है । मात्र इतना ही नहीं, अपितु यह भी स्वीकार किया है कि भगवान् को इस औषध दान देने के प्रभाव में स्वर्गीय श्राविका ने तीर्थंकर नाम-कर्म का उपाजर्जन किया, इसलिए औषध दान भी देना चाहिये । उगने स्पष्ट है कि गुज दिगम्बर जैन विद्वानों को भी इन औषध के वनस्पतिपरक अर्थ में कोई मतभेद नहीं है । देखो इसी निबन्ध का पृष्ठ ३८ ।

अधिक क्या कहें गलत तथा भ्रान्तिपूर्ण ऐसा अनुचित प्रचार कर अति प्राचीनकाल से चले आये जैन धर्म के पवित्र और मत्स्य मिद्वान्तों को तोड़-मोड़कर रखने में ऐसे पवित्र मत्स्यद्वान्तों में अज्ञान तथा द्वेषियों को मिथ्या प्रचार करने का मौका मिलता है । अतः कोई विद्वान् यदि किसी गलतफहमी का शिकार हो भी गया है तो उसे इस बात को मत्स्य हान में जालसाज अपनी भूल के लिये प्रतियोग तथा पश्चात्ताप करना ही उसकी सच्ची विद्वत्ता की कसौटी है ।





समाज में संतोष नहीं हो सकता । तथा भाई गोपालदास जावाभाई अथवा जो कोई अन्य महानुभाव भी इसका अनुकरण कर रहे हों उनको भी वास्तविक अर्थ समझकर अपनी भूल को स्वीकार कर अपनी सरलता और सत्यप्रियता का परिचय देते हुए वास्तविक विद्वत्ता का परिचय देना चाहिये ।

भारत सरकार से भी हमारी प्रार्थना है कि जिस प्रकार Religious Leaders (धार्मिक नेता) नामक पुस्तक प्रकाशित होने पर अल्प-संख्यकों की भावनाओं का आदर करते हुए उसे ज्वत् कर तथा "सरिता" मासिक पत्रिका के जुलाई के अंक को ज्वत् करके सत्य परायणता का परिचय दिया है वैसे ही अध्यापक धर्मानन्द कोशाम्बरी कृत "भगवान् बुद्ध" नामक पुस्तक के लिये भी कदम उठाये जिससे अहिंसा-प्रेमी जगत् के सामने शुद्ध न्याय का परिचय मिले ।

इस निबन्ध को लिखने में जिन ग्रंथों की सहायता ली गयी है उनकी सूची आगे दी है । उन सब ग्रंथकर्त्ताओं का साभार धन्यवाद ।

इस निबन्ध सम्बन्धी सब प्रकार की सम्मतियां एवं सूचनायें नीचे लिखे पते से भेजकर अनुग्रहीत करें ।

२/८२ रूपनगर,  
दिल्ली-६

हीरालाल दूगड़  
व्यवस्थापक, जैन प्राच्यग्रंथ भंडार

## कृतज्ञता-प्रकाश

आगे परमात्मानी सुन्दर ज्ञानार्थ स्वः श्रीमद् विद्यावाक्यम्  
सूर्यवक्त्रा के प्रथमोक्त समस्त के उपरान्त श्री आत्मवाक्य जैन साधना  
पराय आत्मा समस्त प्रत्यक्ष जैन श्री गुरु ने एक स्थान में मङ्गल किया था कि  
सुन्दर के मित्रों की प्रति के लिए श्रीमद्वाक्य समाप्त की स्थापना की आज ।  
समाप्त के अनेक प्रशंसनों का आभार है—श्रीमद् विद्यावाक्य  
सूर्यवक्त्र व श्रीमद् विद्यावाक्य सूर्यवक्त्र की बलापनक प्रतिभा है, इन-  
विभिन्न भाषाओं का मङ्गल व गान, गुणवाक्य, उक्त प्रकाश, योग-वर्ण,  
मन्त्रवाक्य, अर्थविष्णु आदि ।

समाप्त की स्थापना देवता में होती । इस समय भाषाओं के सभी का  
सूचीकरण हो गया है । यह हिन्दुवाक्यकी हुनद का उपरोक्त वरम कर रहे  
है । साहित्य प्रकाश की ओर भी यह प्रकाश गया है । 'जाने कोयल' का  
प्रकाशन हो चुका है । सदा साहित्य मङ्गल के प्रयोग में 'मन्त्र' और  
सर्व' (विष्णु वः समस्त साधनी दम दः, श्री दम, श्रीः श्री प्रकाश हो  
चुका है ।

प्रकाश सुन्दर एक मन्त्रवाक्य विद्यावाक्य विष्णु वः श्रीः श्रीः ।  
विष्णु विष्णु आत्मवाक्य विष्णु विष्णुवाक्य वः श्रीमद्वाक्य हुनद वाक्य-  
मार्ग, मन्त्रवाक्य, समाप्त के बलवत् अर्थवाक्य के हुनद प्रकाश किया है ।  
हुनद प्रकाश है कि विष्णु वः मन्त्रवाक्य आत्मवाक्य वः श्रीमद्वाक्य श्रीमद्  
का हुनद प्रकाश प्रकाश प्रकाश । हुनद प्रकाश मन्त्रवाक्य, आत्मवाक्य विष्णु  
श्री सुन्दरवाक्य श्री वः श्री आत्मवाक्य श्रीमद्वाक्य का अर्थवाक्य आत्मवाक्य  
मन्त्रवाक्य है, विष्णु वः मन्त्रवाक्य के अर्थवाक्य मन्त्रवाक्य वः श्रीमद्वाक्य  
मन्त्रवाक्य वः श्रीमद्वाक्य के अर्थवाक्य मन्त्रवाक्य है ।

श्री श्रीमद्वाक्य

श्री श्रीमद्वाक्य श्री

श्री श्रीमद्वाक्य

श्री श्रीमद्वाक्य

# विषयानुक्रमिका

## प्रथम खण्ड

जैन आचार-विचार तथा निग्रन्थ ज्ञातपुत्र श्रमण भगवान् महावीर

स्तम्भ	नं०	विषय	पृष्ठ
"	१—	जैन अहिंसा का प्रभाव	३
"	२—	जैन गृहस्थों का आचार	१३
"	३—	निग्रन्थ श्रमण का आचार	२२
"	४—	भगवान् महावीर स्वामी का त्यागमय जीवन	२७
"	५—	श्रमण भगवान् महावीर का नत्त्व ज्ञान	३२
"	६—	श्रमण भगवान् महावीर तथा अहिंसा	३५
"	७—	भगवान् महावीर के मामाहार सम्बन्धी विचार	४०
"	८—	जैन मामाहार में गर्वथा अलिप्त	४८
"	९—	तथागत गौतम बुद्ध द्वारा निग्रन्थचर्या में मांसभक्षण निषेध	५७
"	१०—	बौद्ध-जैन मंत्राद में मांसाहार निषेध	६२

## द्वितीय खंड

निगण्ड नादपुत्र श्रमण भगवान् महावीर पर मामाहार के आक्षेप का निराकरण

स्तम्भ	नं०	विषय	पृष्ठ
"	११—	महा श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पर मांसाहार के आक्षेप का निराकरण	६९

संख्या नं०	भाग	विषय	पृष्ठ
" ११	"	१—विद्यार्थकाल में प्रथम वर्ष के विषयों के विवरणों के साथ	३१
" "	"	२—दूसरे वर्ष के विषयों के विवरणों के साथ	३८
" "	"	३—तीसरे वर्ष के विषयों के विवरणों के साथ	३९
" "	" ४	५—विद्यार्थकाल में विषयों के विवरणों के साथ	४३
" "	"	६—दूसरे वर्ष के विषयों के विवरणों के साथ	४६
" "	"	७—तीसरे वर्ष के विषयों के विवरणों के साथ	४९
" "	"	८—चौथे वर्ष के विषयों के विवरणों के साथ	५३
" "	"	९—पाँचवें वर्ष के विषयों के विवरणों के साथ	५६
" "	"	१०—छठे वर्ष के विषयों के विवरणों के साथ	५९
" "	"	११—सातवें वर्ष के विषयों के विवरणों के साथ	६३
" "	"	१२—आठवें वर्ष के विषयों के विवरणों के साथ	६६
" "	"	१३—नौवें वर्ष के विषयों के विवरणों के साथ	६९
" "	"	१४—दसवें वर्ष के विषयों के विवरणों के साथ	७३
" "	"	१५—ग्यारहवें वर्ष के विषयों के विवरणों के साथ	७६
" "	"	१६—बारहवें वर्ष के विषयों के विवरणों के साथ	७९
" "	"	१७—त्रयोदशवें वर्ष के विषयों के विवरणों के साथ	८३
" "	"	१८—चौदहवें वर्ष के विषयों के विवरणों के साथ	८६
" "	"	१९—पंद्रहवें वर्ष के विषयों के विवरणों के साथ	८९
" "	"	२०—सोलहवें वर्ष के विषयों के विवरणों के साथ	९३
" "	"	२१—अठारहवें वर्ष के विषयों के विवरणों के साथ	९६
" "	"	२२—बीसवें वर्ष के विषयों के विवरणों के साथ	९९
" "	"	२३—इकतीसवें वर्ष के विषयों के विवरणों के साथ	१०३
" "	"	२४—चालीसवें वर्ष के विषयों के विवरणों के साथ	१०६
" "	"	२५—पचासवें वर्ष के विषयों के विवरणों के साथ	१०९
" "	"	२६—सत्तरवें वर्ष के विषयों के विवरणों के साथ	११३
" "	"	२७—अष्टादशवें वर्ष के विषयों के विवरणों के साथ	११६
" "	"	२८—नव्वहवें वर्ष के विषयों के विवरणों के साथ	११९
" "	"	२९—तीसवें वर्ष के विषयों के विवरणों के साथ	१२३
" "	"	३०—चालीसवें वर्ष के विषयों के विवरणों के साथ	१२६

स्तम्भ नं०	भाग	विभाग	विषय	पृष्ठ
" ११	"	"	३—वनस्पत्यंग मांसादि	१०९
" "	"	"	४—मांसादि शब्दों के अंग्रेजी कोशकारों के अर्थ	११२
" "	"	"	५—वर्तमान में माने जानेवाले प्राणी-वाच्य शब्दों के तथा मांस मत्स्यादि शब्दों के अनेक अर्थ	११२
" "	"	"	६—शब्द, जो प्राणवारी और वनस्पति दोनों के वाचक हैं	११५
" "	"	"	७—वर्तमानकाल में कुछ प्रचलित शब्द	११६
" "	"	"	८—श्रमण भगवान् महावीर और भक्ष्याभक्ष्य विचार	११७
" "	"	"	९—विवादास्पद सूत्रपाठ (विचारणीय मूलपाठ)	१२२
" "	"	"	१०—कवोय क्या था	१२३
" "	"	"	११—मज्जार कडए कुक्कुड- मंसए क्या था	१२७
" "	"	"	१२—विवादास्पद सूत्रपाठ का वास्तविक अर्थ	१४५

### तृतीय खंड

उपसंहार

१४९

## साधन ग्रन्थों की नामावली

१. अर्थविद मणिना
२. अर्थविद (मणिना)
३. अर्थविद मणिना (मणिना)
४. अर्थविद मणिना
५. अर्थविद मणिना
६. अर्थविद मणिना
७. अर्थविद मणिना
८. अर्थविद मणिना
९. अर्थविद मणिना
१०. अर्थविद मणिना
११. अर्थविद मणिना
१२. अर्थविद मणिना

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

- [illegible]

२२. आगम अन्तकृतदशांग सूत्र
२३. आगम प्रश्न व्याकरण सूत्र
२४. आगम विपाक सूत्र
२५. आगम प्रज्ञापना सूत्र
२६. आगम कल्प सूत्र
२७. आगम दशवैकालिक सूत्र
२८. आगम उत्तराध्ययन सूत्र
२९. आगम अनुयोगद्वार सूत्र
३०. जैन चरित माला (दिगम्बर)
३१. जैन सत्य प्रकाश (मासिक)
३२. तत्त्वार्थ सूत्र
३३. निरुक्कुरल-प्रस्तावना (दिगम्बर)
३४. त्रिपण्डि शलाका पुरुष चरित्र (हेमचन्द्र)
३५. धर्म-विन्दु (हरिभद्र)
३६. धर्म-रत्न करंडक (वर्द्धमान सूरि)
३७. निघट्ट मग्नह (हेमचन्द्र)
३८. महावीर चरित्र प्राकृत (नेमिचन्द्र सूरि)
३९. महावीर चरित्र प्राकृत (गुणचन्द्र सूरि)
४०. योगयाम्त्र (हेमचन्द्र)
४१. श्राद्ध गुण विवरण
४२. पट० प्राकृत० (हेमचन्द्र)
४३. मंथोत्र प्रकरण
४४. मंथोत्र मन्त्रतिका
४५. जैन पत्र-पत्रिका
- निघट्ट कोश
४६. नानार्थ रत्नमाला
४७. निघट्ट (कपदेव)

४८. निघण्टु-भावप्रकाश  
 ४९. निघण्टु-मदनपात्र  
 ५०. निघण्टु-रत्नाकर  
 ५१. निघण्टु-राज  
 ५२. निघण्टु-राजवल्लभ  
 ५३. निघण्टु चैत्रक उर्दू भाषा में (कृष्ण दयाल)  
 ५४. निघण्टु शालिग्राम  
 ५५. निघण्टु मेघ  
 ५६. निरुक्त भाष्य (आचार्य शास्त्र)  
 ५७. पाक उपेक्ष  
 घोट साहित्य  
 ५८. अमृतनिरास  
 ५९. लट्ठ कथा  
 ६०. पानपत्रिका का नावुर्गाम धर्म (धर्मोत्तम कौशाबी)  
 ६१. चर्चा  
 ६२. घोट-रत्न (राहुल शास्त्र्यायन)  
 ६३. भक्तान् घट (धर्मोत्तम कौशाबी)  
 ६४. कविजन निरास  
 ६५. कविजन निरास  
 अन्य ग्रंथ  
 ६६. धर्मोत्तम  
 ६७. धर्मोत्तमनिर्माण (धर्मोत्तम)  
 ६८. धर्मोत्तमनिर्माण  
 ६९. धर्मोत्तम  
 ७०. धर्मोत्तम निरास  
 ७१. धर्मोत्तम



- ७२. हिन्दी विश्वकोश
- ७३. ऐतरेय ब्राह्मण
- ७४. पत्र-पत्रिकाएं

### ENGLISH BOOKS

- 75. Sanskrit English Dictionary (Apte)
- 76. English Dictionary (J. Ogilvie)
- 77. Sanskrit English Dictionary (Monier Monier-Williams)
- 78. A. S. B 1868 N/85
- 79. Mr. Gate report
- 80. Hinduism (Prof. D. C. Sharma)

### उद्धरण

- १. डा० राधा विनोद पाल
- २. मि. सरमली
- ३. महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गांधी
- ४. मि. एच कूप लेंड
- ५. मि. वेगलर
- ६. कर्नल टैलटन
- ७. लोकमान्य बालगंगाधर तिलक
- ८. अल्ल्याडी कृष्णा स्वामी अय्यर
- ९. डा. हर्मन त्रेलोवी
- १०. डा. ग्टेन कोनो

## प्रथम खण्ड

जैन आचार-विचार तथा निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र  
श्रमण भगवान् महावीर



## जैन अहिंसा का प्रभाव

जैन अहिंसा के बारे में कौन नहीं जानता ? जैन धर्म के प्रत्येक आचार-विचार की कसौटी अहिंसा ही है। जैन धर्म की इसी विशेषता के कारण विश्व का अन्य कोई भी धर्म इस की समानता नहीं कर सकता। आज भी जैनों के अहिंसा, संयम, तप का पालन तथा मदिरा-मांसादि का त्याग गाने गानार में प्रसिद्ध है। इसी लिये यह धर्म "दया-धर्म" के नाम से आज भी जगद्विख्यात है। इसकी अत्यधिक अहिंसा का देखकर आज के विदेशी विद्वान् संत-गुरु हो जाते हैं। डा० राधा विनोद पाण्ड Ex-judge, International Tribunal for trying the Japanese War Criminals, ने अपने अनिवार्य में कहा है कि—

If any body has any right to receive and welcome the delegates to any Pacifists' Conference, it is the Jain Community. The principle of Ahimsa, which alone can secure World Peace, has indeed been the special contribution to the cause of human development by the Jain Tirthankaras, and who else would have the right to talk of World Peace than the followers of the great Sages Lord Parthvanath and Lord Mahavira ?

—( Dr. Radha Vinod Paul )

समाप्त—विश्वमणि सम्प्रदाय तथा के प्रतिनिधियों का हरिद्वार स्वागत करने का अवसर, जैन धर्म के लिये ही है, क्योंकि अहिंसा ही विश्वमणि का सारनाम है और इसी अहिंसा की ओर हम सब को जैन धर्म के प्रभावशाली मार्गदर्शकों ने ही रखा है। इस लिये

विश्वशांति की आवाज प्रभु श्री पार्श्वनाथ और प्रभु श्री महावीर के अनुयायियों के अतिरिक्त दूसरा कौन कर सकता है ?

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी भी लिखते हैं कि "महावीर स्वामी का नाम किन्नी भी निद्वान्त के लिये यदि पूजा जाता है तो वह अहिंसा ही है। प्रत्येक धर्म की महत्ता इसी बात में है कि उस धर्म में अहिंसा का तत्त्व कितने प्रमाण में है। और इस तत्त्व को यदि किसी ने अधिक-से-अधिक विकसित किया है तो वह भगवान् महावीर ही थे।"

भगवान् महावीर हो अथवा कोई भी जैन तीर्थंकर हो, न तो वे स्वयं ही मदिरा-मांसादि का प्रयोग करते हैं और न ही उनके अनुयायी यहाँ तक कि जैन धर्म पर विश्वास रखने वाले गृहस्थ भी, जो किसी तरह का व्रत-नियम या प्रतिज्ञा को ग्रहण नहीं करते अर्थात् श्रावक के व्रतों को भी ग्रहण नहीं करते, मांस-मदिरादि अभक्ष्य पदार्थों से हमेशा दूर रहते आ रहे हैं। भगवान् महावीर आदि जैन तीर्थंकरों के मांसाहार निरोध का सविशेष परिचायक सबूत (प्रमाण) इससे अधिक क्या हो सकता है।<sup>१</sup>

निर्ग्रन्थ श्रमण-जैन साधु तो छः काया के जीवों की हिंसा से बचते हैं। वे त्रयकाय के जीवों का आरंभ (हिंसा) नहीं करते, सचित्त फल, फूल, सब्जी आदि का भक्षण नहीं करते। अग्निकाय का आरम्भ नहीं करते। सचित्त जल का उपयोग नहीं करते। बैठना या गड़े होना हो तो रजोहरण (ऊनादि नरम वस्तु का एक गुच्छा, जिगमे स्थान साफ करने पर जीवादि की हिंसा का बचाव होना है) में स्थानादि का प्रमाजंन (माफ़-मूफ़) करके बैठने, उठने, चलने, मोते हैं, ताकि किसी सूक्ष्म जीव की भी हिंसा न हो जावे। पृथ्वी को न मच्यं मोदने हैं न दूगरों में गुदवाते हैं। वायुकाय (वायु के जीवों) की हिंसा से बचने के लिए न सा चलाते हैं, न

१. भगवान् महावीर तथा उनके अनुयायी निर्ग्रन्थ श्रमण एवं श्रमणोपासकों के आचार सम्बन्धी विशेष स्पष्टीकरण अगले स्तम्भों में करेंगे।

दूसरों ने चले जाते हैं । रात्रि-भोजन भी नहीं करते, क्योंकि हमने प्रायः उस जीवों की हिंसा होनी है तथा भोजन के साथ उस जीवों के पेट में चले जाने से नाशभक्षण का दोष भी संभव है । इससे स्पष्ट हो जाता है कि समस्त जैन तीर्थंकरों—मगवान् महावीर आदि—ने अपने अनुयायी जैन मुनियों के लिये स्कूल में लेकर गृध्रम हिंसा से बचने के लिये नया अहिंसापालन के प्रति कितना आग्रहक करने का आदेश दिया है । जिसके फलस्वरूप आज तक जैन साधु-माधवी संघ स्कूल में लेकर गृध्रम-से-गृध्रम अहिंसा का पालन करने में सदा आग्रहक बना आ रहा है । यह बात आज भी संगार प्रत्यक्ष देख रहा है ।

प्राणी मात्र के साथ सर्वज्ञ भगवान् महावीर जीव का स्वस्व जानते थे । उन्होंने बतलाया कि मानव जब तक अपनी गृध्रम अहिंसा का पालन नहीं करता तब तक वह निर्वाण (मोक्ष) प्राप्ति में समर्थ नहीं हो सकता । शायद ही कुछ प्राप्त करने का अहिंसा के पूर्ण पालन को छोड़कर अन्य साधन हो ही नहीं सकता । इसी वजह से बीलगाय-सर्वज्ञ भगवान् महावीर द्वारा वाचस्पति छात्रों का प्रधान विषय अहिंसा ही है । जो धर्मनिरपेक्ष तीर्थंकर नहीं तक गृध्रम रूप से जीवों की हिंसा से स्वयं मरते हैं और दूसरों के लिये बचने का विधान करते हैं उन सब साधु-भक्षण का आदेश मगवान् महावीर तक अहित है ? इनके लिये कुछ सटक स्वयं विचार कर सकते हैं ।

अहिंसा के विषय में परमात्मानर बीलगाय सर्वज्ञ भगवान् महावीर ने यह स्वयं फरमाया है :—

“तस्ये पान्ता विपाज्जया, सुहसाया दुहसिद्धिस्ता,  
अपिपयहा विपसीविप्पो जोकित्तमाणा पातिपाएस्स संघसो”

(आचार्यसूत्र १ अ० २ उ० ३)

अर्थात्—जब प्राणियों को वायुमय विष है, तब सुख के अभिप्राय है, तब सुख को अविशुद्ध है, तब सुख को अहित है, जोवन मनी को विष है, मनी जीवों की हिंसा करते हैं, उस विष-विष को मारना या बचाने देना मनी वांछित है ।

जो "सराक" के नाम से प्रसिद्ध है। सराक शब्द "सरावक-श्रावक" का अपभ्रंश होकर बना है। ये लोग कृषि, कपड़ा बुनने तथा दुकानदारी आदि का व्यवसाय करते हैं। ये लोग उन प्राचीन जैन श्रावकों के वंशज हैं जो जैन जाति के अवशेष रूप हैं। यह जाति आज प्रायः हिन्दू धर्म की अनुयायी हो गई है। कहीं-कहीं अभी तक ये लोग अपने आपको जैन समझते हैं। इस जाति के विषय में अनेक पाश्चात्य तथा पौराणिक विद्वानों ने उल्लेख किया है। जिसका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

१. मि० गेट अपनी सेंसर्स रिपोर्ट में लिखते हैं कि :—

इस बंगाल देश में एक खास तरह के लोग रहते हैं। जिनको 'सराक' कहते हैं। इनकी संख्या बहुत है। "ये लोग मूल से जैन थे", तथा इन्हीं की दंतकथाओं एवं इनके पड़ोसी भूमिजों की दंतकथाओं से मालूम होता है कि—ये एक ऐसी जाति की सन्तान हैं जो भूमिजों के आने के समय से भी पहले बहुत प्राचीन काल से यहां बसो हुई है। इनके बड़ों ने पार, छर्रा, बोरा और भूमिजों आदि जातियों के पहले अनेक स्थानों पर मंदिर बनवाये थे। यह अब भी सदा से ही एक शान्तिमयी जाति है जो भूमिजों के साथ बहुत मेल-जोल में रहती है। कर्नल डैलटन के मतानुसार ये जैन हैं और ईसा पूर्व छठी शताब्दी ( Sixth Century B. C. ) से ये लोग यहां आबाद हैं।

यह शब्द "सराक" निःसन्देह "श्रावक" से ही निकला है, जिस का अर्थ संस्कृत में 'बुनने वाला' होता है। जैनों में यह शब्द गृहस्थों के लिये आता है जो लौकिक व्यवसाय करते हैं और जो यति या साधु से भिन्न हैं।

(मि० गेट सेंसर्स रिपोर्ट)

२. जैनागमों में श्रावक शब्द गृहस्थ व्रतधारी जैनों के लिये आया है, परन्तु बौद्धों ने श्रावक शब्द बौद्ध भिक्षुओं के लिये प्रयोग किया है। 'सराक' जो कि श्रावक शब्द का अपभ्रंश है वह गृहस्थों की जाति के लिये प्रसिद्ध है। इसलिए यह जाति जैन गृहस्थ-श्रमणोपासकों का अवशेष रूप है इसमें सन्देह नहीं है।

३. मि० सरस्वती ज्यूने :- दि—

मर्यादा मानक के 'मर्यादा' अर्थ निम्न हैं, यद्यपि वे अनेक ही भाषाओं में  
बोले जाते हैं, वे सभी ही अर्थ में समान हैं। वे अनेक भाषाओं में हैं, यद्यपि  
मर्यादा ही सभी भाषाओं में 'मर्यादा' के अर्थ में ही हैं, यद्यपि वे सभी भाषाओं में हैं।

२. नि० पुरख्य मंत्र का भाग है कि—

[illegible][illegible]

T. A. S. B. 1066 N. E. 5. 1071 1/2 in. —

They are represented as having great courage against taking life. They must not eat till they have seen the man, the woman and the young children.

[illegible]

५. ईश्वर-संसारकाय के अर्द्धांगीकरण का प्रमाण :-

[illegible]

Downloaded from <http://ajphaphysiol.physiology.org/> by guest on September 11, 2015

[illegible]



(६) यह बात बड़े गौरव की है कि जिस जाति को जैन धर्म भूले हुए आज तेरह सौ वर्ष हो गये हैं उनके वंशज आज तक बंगाल जैसे मांसाहारी देश में रहते हुए भी कट्टर निरामिषाहारी हैं। इस जाति में मत्स्य तथा मांस का व्यवहार सर्वथा वर्ज्य है। यहाँ तक कि बालक भी मत्स्य या मांस नहीं खाते। मांसाहारी और हिमकों के मध्य में रहते हुए भी ये लोग पूर्ण अहिंसा तथा निरामिषभोजी हैं।

७. फर्नेल डेलटन का मत है कि:—

इस जाति को यह अभिमान है कि इस में कोई भी व्यक्ति किसी फौजदारी अपराध में दंडित नहीं हुआ। और अब भी संभव है कि इन्हें यही अभिमान है कि इस ब्रिटिश राज्य में भी किसी को अब तक कोई फौजदारी अपराध पर दंड नहीं मिला। ये वास्तव में शांति और नियम से चलने वाले हैं। अपने आप और पड़ोसियों के साथ शांति से रहते हैं। ये लोग बहुत प्रतिष्ठित तथा वृद्धिमान मालूम होते हैं।

(८) अनेकों जैन मन्दिर और जैन तीर्थंकरों, गणधरों, निर्घणों, श्रावक, श्रविकार्यों की मूर्तियाँ आज भी इस देश में सर्वत्र दधर-उधर बिखरी पड़ी हैं, जो कि "मराक" लोगों के द्वारा निर्मित तथा प्रतिष्ठित कराई गयी हैं। (A. S. B. 1868)

साधारण यह है कि हजारों वर्षों में आने वाले धर्म (जैन धर्म) को मूल देने पर भी और अन्य साधारण धर्म-संप्रदायों में मिल जाने के बाद भी इस संप्रदाय में जैन धर्म के आचार, सम्बन्धी अनेक विनियोग आज भी विद्यमान हैं।

इस लोके विदित है कि जैन धर्म नियमित विनियोग, श्रमपूर्ण भगवत, महादेव आदि तीर्थंकरों ने अहिंसा का मार्ग प्रदर्शित किया। अपने अपने आचरण में लोकाय सिद्ध के लोगों को इस लोके चलने के अनेक विनियोग, विनियोग विनियोग स्वयं विनियोगों ने उन विनियोगों को अहिंसा का मार्ग प्रदर्शित किया। (मनुस्मृत्य, श्रावक-श्रविकार्य)

[illegible][illegible]

1. 在 1949 年 10 月 1 日，即中华人民共和国成立那天，毛泽东在天安门城楼上向全国人民发表了著名的“新中国第一声”，宣告了新中国的诞生。

चारित्र के अभाव में सर्व कर्मजन्य उपाधि से मुक्ति रूप निर्वाण (मोक्ष) की प्राप्ति कदापि नहीं कर सकता ।

जैन धर्मोपासकों (गृहस्थों), जैन धर्म के प्रचारक निर्ग्रंथों (साधुओं) तथा जैनधर्मनिर्यामक तीर्थंकरों का आचार कितना पवित्र या और है इस का संक्षिप्त विवेचन करना इस लिये यहाँ आवश्यक है कि आप देखेंगे—ऐसे चरित्र वाला कोई भी व्यक्ति प्राण्यंग मत्स्य-मांसादि अभक्ष्य पदार्थों का कदापि भक्षण नहीं कर सकता ।

---

(क) गृहस्थ को भी पूर्ण भक्ति।

[illegible]

अंतः शरीर शक्ति प्रदान करने के लिए—

1. 1942, 2. 1943, 3. 1944, 4. 1945, 5. 1946, 6. 1947, 7. 1948, 8. 1949, 9. 1950, 10. 1951, 11. 1952, 12. 1953, 13. 1954, 14. 1955, 15. 1956, 16. 1957, 17. 1958, 18. 1959, 19. 1960, 20. 1961, 21. 1962, 22. 1963, 23. 1964, 24. 1965, 25. 1966, 26. 1967, 27. 1968, 28. 1969, 29. 1970, 30. 1971, 31. 1972, 32. 1973, 33. 1974, 34. 1975, 35. 1976, 36. 1977, 37. 1978, 38. 1979, 39. 1980, 40. 1981, 41. 1982, 42. 1983, 43. 1984, 44. 1985, 45. 1986, 46. 1987, 47. 1988, 48. 1989, 49. 1990, 50. 1991, 51. 1992, 52. 1993, 53. 1994, 54. 1995, 55. 1996, 56. 1997, 57. 1998, 58. 1999, 59. 2000, 60. 2001, 61. 2002, 62. 2003, 63. 2004, 64. 2005, 65. 2006, 66. 2007, 67. 2008, 68. 2009, 69. 2010, 70. 2011, 71. 2012, 72. 2013, 73. 2014, 74. 2015, 75. 2016, 76. 2017, 77. 2018, 78. 2019, 79. 2020, 80. 2021, 81. 2022, 82. 2023, 83. 2024, 84. 2025, 85. 2026, 86. 2027, 87. 2028, 88. 2029, 89. 2030, 90. 2031, 91. 2032, 92. 2033, 93. 2034, 94. 2035, 95. 2036, 96. 2037, 97. 2038, 98. 2039, 99. 2040, 100. 2041, 101. 2042, 102. 2043, 103. 2044, 104. 2045, 105. 2046, 106. 2047, 107. 2048, 108. 2049, 109. 2050, 110. 2051, 111. 2052, 112. 2053, 113. 2054, 114. 2055, 115. 2056, 116. 2057, 117. 2058, 118. 2059, 119. 2060, 120. 2061, 121. 2062, 122. 2063, 123. 2064, 124. 2065, 125. 2066, 126. 2067, 127. 2068, 128. 2069, 129. 2070, 130. 2071, 131. 2072, 132. 2073, 133. 2074, 134. 2075, 135. 2076, 136. 2077, 137. 2078, 138. 2079, 139. 2080, 140. 2081, 141. 2082, 142. 2083, 143. 2084, 144. 2085, 145. 2086, 146. 2087, 147. 2088, 148. 2089, 149. 2090, 150. 2091, 151. 2092, 152. 2093, 153. 2094, 154. 2095, 155. 2096, 156. 2097, 157. 2098, 158. 2099, 159. 2100, 160. 2101, 161. 2102, 162. 2103, 163. 2104, 164. 2105, 165. 2106, 166. 2107, 167. 2108, 168. 2109, 169. 2110, 170. 2111, 171. 2112, 172. 2113, 173. 2114, 174. 2115, 175. 2116, 176. 2117, 177. 2118, 178. 2119, 179. 2120, 180. 2121, 181. 2122, 182. 2123, 183. 2124, 184. 2125, 185. 2126, 186. 2127, 187. 2128, 188. 2129, 189. 2130, 190. 2131, 191. 2132, 192. 2133, 193. 2134, 194. 2135, 195. 2136, 196. 2137, 197. 2138, 198. 2139, 199. 2140, 200. 2141, 201. 2142, 202. 2143, 203. 2144, 204. 2145, 205. 2146, 206. 2147, 207. 2148, 208. 2149, 209. 2150, 210. 2151, 211. 2152, 212. 2153, 213. 2154, 214. 2155, 215. 2156, 216. 2157, 217. 2158, 218. 2159, 219. 2160, 220. 2161, 221. 2162, 222. 2163, 223. 2164, 224. 2165, 225. 2166, 226. 2167, 227. 2168, 228. 2169, 229. 2170, 230. 2171, 231. 2172, 232. 2173, 233. 2174, 234. 2175, 235. 2176, 236. 2177, 237. 2178, 238. 2179, 239. 2180, 240. 2181, 241. 2182, 242. 2183, 243. 2184, 244. 2185, 245. 2186, 246. 2187, 247. 2188, 248. 2189, 249. 2190, 250. 2191, 251. 2192, 252. 2193, 253. 2194, 254. 2195, 255. 2196, 256. 2197, 257. 2198, 258. 2199, 259. 2200, 260. 2201, 261. 2202, 262. 2203, 263. 2204, 264. 2205, 265. 2206, 266. 2207, 267. 2208, 268. 2209, 269. 2210, 270. 2211, 271. 2212, 272. 2213, 273. 2214, 274. 2215, 275. 2216, 276. 2217, 277. 2218, 278. 2219, 279. 2220, 280. 2221, 281. 2222, 282. 2223, 283. 2224, 284. 2225, 285. 2226, 286. 2227, 287. 2228, 288. 2229, 289. 2230, 290. 2231, 291. 2232, 292. 2233, 293. 2234, 294. 2235, 295. 2236, 296. 2237, 297. 2238, 298. 2239, 299. 2240, 300. 2241, 301. 2242, 302. 2243, 303. 2244, 304. 2245, 305. 2246, 306. 2247, 307. 2248, 308. 2249, 309. 2250, 310. 2251, 311. 2252, 312. 2253, 313. 2254, 314. 2255, 315. 2256, 316. 2257, 317. 2258, 318. 2259, 319. 2260, 320. 2261, 321. 2262, 322. 2263, 323. 2264, 324. 2265, 325. 2266, 326. 2267, 327. 2268, 328. 2269, 329. 2270, 330. 2271, 331. 2272, 332. 2273, 333. 2274, 334. 2275, 335. 2276, 336. 2277, 337. 2278, 338. 2279, 339. 2280, 340. 2281, 341. 2282, 342. 2283, 343. 2284, 344. 2285, 345. 2286, 346. 2287, 347. 2288, 348. 2289, 349. 2290, 350. 2291, 351. 2292, 352. 2293, 353. 2294, 354. 2295, 355. 2296, 356. 2297, 357. 2298, 358. 2299, 359. 2300, 360. 2301, 361. 2302, 362. 2303, 363. 2304, 364. 2305, 365. 2306, 366. 2307, 367. 2308, 368. 2309, 369. 2310, 370. 2311, 371. 2312, 372. 2313, 373. 2314, 374. 2315, 375. 2316, 376. 2317, 377. 2318, 378. 2319, 379. 2320, 380. 2321, 381. 2322, 382. 2323,

۱۰۲۳۴۵۶۷۸۹۱۰۱۱۱۲۱۳۱۴۱۵۱۶۱۷۱۸۱۹۲۰۲۱۲۲۲۳۲۴۲۵۲۶۲۷۲۸۲۹۳۰۳۱۳۲۳۳۳۴۳۵۳۶۳۷۳۸۳۹۴۰۴۱۴۲۴۳۴۴۴۵۴۶۴۷۴۸۴۹۵۰۵۱۵۲۵۳۵۴۵۵۵۶۵۷۵۸۵۹۶۰۶۱۶۲۶۳۶۴۶۵۶۶۶۷۶۸۶۹۷۰۷۱۷۲۷۳۷۴۷۵۷۶۷۷۷۸۷۹۸۰۸۱۸۲۸۳۸۴۸۵۸۶۸۷۸۸۸۹۹۰۹۱۹۲۹۳۹۴۹۵۹۶۹۷۹۸۹۹۱۰۰۰

[illegible]

2025 10 10 14:00

[illegible]

जैन परम्परा के अनुसार श्रावक-श्राविका बनने की योग्यता प्राप्त करने के लिये निम्नलिखित सात दुर्व्यसनों का त्याग करना आवश्यक है :-

१. जुआ खेलना, २. मांसाहार, ३. मदिरापान, ४. वेश्यागमन, ५. शिकार, ६. चोरी, ७. परस्त्रीगमन अथवा परपुरुषगमन । ये सात दुर्व्यसन<sup>१</sup> हैं ।

ये सातों ही दुर्व्यसन जीवन को अवःपतन की ओर ले जाते हैं ।<sup>२</sup> इनमें से किसी भी एक व्यसन में फंसा हुआ अभागा मनुष्य प्रायः सभी व्यसनों का शिकार बन जाता है ।

इन मान व्यसनों में से नियम पूर्वक किसी भी व्यसन का सेवन न करने वाले ही श्रावक-श्राविका बनने के पात्र होते हैं ।

### (स) श्रावक बनने के लिये:—

उपर्युक्त मान व्यसनों के त्याग के अतिरिक्त गृहस्थ में अन्य गुण भी होने चाहिये । जैन परिभाषा में उन्हें मार्गानुसारी गुण कहते हैं । इन गुणों में से कुछ ये हैं:—

नीति पूर्वक धर्मोपासन करे, शिष्टाचार का प्रशंसक हो, गुणवान् पुरुषों का आदर करे, मधुरभाषी हो, लज्जाशील हो, शीलवान् हो, माता-पिता का भक्त एवं सेवक हो, धर्मविरुद्ध, देशविरुद्ध—एवं कुलविरुद्ध कार्य न करने वाला हो, आय में अधिक व्यय न करनेवाला हो, प्रतिदिन धर्मोपदेश सुनने वाला हो, देव-गु (जिनेन्द्र प्रभु तथा निर्देव गु ) की भक्ति करने वाला हो, नियत समय पर परिमित मात्रिक भोजन करने वाला, अतिदमन-हीन जनों का ए. गाध-मनों का यथाचित मत्कार करने



२. सत्याणुव्रत, ३. अन्नौर्याणुव्रत, ४. ब्रह्मचर्याणुव्रत, ५. परिग्रह-परिमाण अणुव्रत ।

तीन गुणव्रत—६. दिग्व्रत, ७. भोगोपभोगपरिमाण व्रत, ८. अनर्थदण्डत्याग व्रत ।

चार शिक्षाव्रत—९. सामायिक व्रत, १०. देशावकाशिक व्रत, ११-पीपवोपवास व्रत, १२. अतिथिसंविभाग व्रत ।

### (घ) श्रावक-श्राविका का अहिंसाणुव्रत

पहला व्रत “स्थूल प्राणातिपातविरमण व्रत” अर्थात्—जीवों की हिंसा से विरत होना । संसार में दो प्रकार के जीव हैं, स्थावर और व्रस । जो जीव अपनी इच्छानुसार स्थान बदलने में असमर्थ हैं वे स्थावर कहलाते हैं । पृथ्वीकाय, अप्काय (पानी), अग्निकाय, वायुकाय तथा वनस्पति-काय—ये पाँच प्रकार के स्थावर जीव हैं । इन जीवों के सिर्फ़ स्पर्शेन्द्रिय होती है । अतएव इन्हें एकेन्द्रिय जीव भी कहते हैं ।

दुःख-मुक्त के प्रसंग पर जो जीव अपनी इच्छा के अनुसार एक जगह से दूसरी जगह पर आने-जाते हैं, जो चलते-फिरते और बोलते हैं, वे व्रस हैं । इन व्रस जीवों में कोई दो इन्द्रियों वाले, कोई तीन इन्द्रियों वाले, कोई चार इन्द्रियों वाले, कोई पाँच इन्द्रियों वाले होते हैं । संसार के समस्त जीव व्रस और स्थावर विभागों में समाविष्ट हो जाते हैं ।

मुनि दोनों प्रकार के जीवों की हिंसा का पूर्ण रूप से त्याग करते हैं । परन्तु गृहस्थ ऐसा नहीं कर सकते, अतएव उनके लिए स्थूल हिंसा के त्याग का विधान किया गया है । निरपराध व्रस जीवों की संकल्प पूर्वक की जाने वाली हिंसा को ही गृहस्थ त्यागता है ।

जैन शास्त्रों में हिंसा चार प्रकार की बतलाई गयी है—<sup>१</sup>

१. आरम्भी हिंसा, २. उद्योगी हिंसा, ३. विरोधी हिंसा, ४. संकल्पी हिंसा ।

१. प्रमाणानुसार अश्वत्थार





## (ङ) सातवां भोगोपभोगपरिमाण व्रत—

एक बार भोगने योग्य आहार आदि भोग कहलाते हैं। जिन्हें पुनः पुनः भोगा जा सके, ऐसे वस्त्र, पात्र, मकान आदि उपभोग कहलाते हैं।<sup>१</sup> इन पदार्थों को काम में लाने की मर्यादा बांध लेना “भोगोपभोगपरिमाण व्रत” है। यह व्रत भोजन और काम (व्यवसाय) से दो भागों में विभक्त किया गया है। भक्ष्य (मानव के खाने-पीने योग्य) भोजन पदार्थों की मर्यादा करने और अभक्ष्य (मानव के न खाने-पीने योग्य) पदार्थों का त्याग करने का इस व्रत के पहले भाग में विधान है। भोजन (भक्ष्य) पदार्थों की मर्यादा करने से लोलुपता पर विजय प्राप्त होती है तथा अभक्ष्य पदार्थों (मांस, मदिरा आदि) के त्याग से लोलुपता के त्याग के साथ हिंसा का त्याग भी हो जाता है। दूसरे भाग में व्यापार संबन्धी मर्यादा कर लेने से पाप-पूर्ण व्यापारों का त्याग हो जाता है।

इस व्रत को अङ्गीकार करने वाला साधक मदिरा, मांस, शहद, तथा दो घड़ी (४८ मिनट) छाछ में से निकालने के बाद का मक्खन (क्योंकि दो घड़ी के बाद मक्खन में त्रस जीव उत्पन्न हो जाते हैं), पाँच उदुम्बर फल (बड़-गोपल-पिलंगण-कटुमर-गूलर के फल), रात्रिभोजन इत्यादि का त्याग करता है। क्योंकि इन सब में त्रस जीवों की उत्पत्ति होती रहती है इस लिये इनके भक्षण से मांसाहार का दोष लगता है, जो कि श्रावक के लिये सर्वथा वर्जित है।<sup>२</sup> गार्ग्य यह है कि ऐसे सब प्रकार के पदार्थ, जिनके

१. सङ्ग्रेह भुज्यते यः स भोगोऽन्त्यग्राहिकः ।

पुनः पुनः पुनर्भोग्य उपभोगोऽङ्गनादिकः ॥

(योगशास्त्र प्र० ३ श्लो० ५) ।

२. सर्वं नागं नयनीनं मयूदुम्बरान्तराम् ।

अन्त्यग्रामजानक्यं रात्रौ च भोजनम् ॥ ६ ॥

आम योग्यं सम्भूतं द्विदलं पुष्पितोदनम् ।

दध्यद्विदलानां कुक्किनाम् च वर्जयेत् ॥ ७ ॥

(अ० हेमचन्द्रवृत्त योग शास्त्र प्र० ३) ।







## निर्ग्रन्थ श्रमण [जैन साधु-साध्वी] का आचार

जैनागमों में त्वागमय जीवन अद्भीकार करने वाले व्यक्ति की योग्यता का विस्तृत वर्णन किया है। आयु का कोई प्रतिबन्ध न होने पर भी जिसे शुभ तत्त्व-दृष्टि प्राप्त हो चुकी है, जिगने आत्मा-जनात्मा के स्वरूप को समझ लिया है, जो भोग-रोग और इन्द्रियों के विषयों को विष समझ चुका है तथा जिसके मानस सर में वैराग्य की ऊर्मियाँ लहराने लगी हैं वही त्यागी निर्ग्रन्थ बनने के योग्य है। पूर्ण विरक्त होकर शरीर गम्बन्धी ममत्व का भी त्याग करके जो आत्म-आराधना में नलग्न रहना चाहता है वह जैन मुनिधर्म अर्थात् जैन दीक्षा ग्रहण करता है।

उसे घर-बार, धन-दौलत, स्त्री-परिवार, माता-पिता, खेत-जमीन आदि पदार्थों का त्याग करना पड़ता है। सच्चा श्रमण वही है जो अपने आन्तरिक विकारों पर विजय प्राप्त कर सकता है। वह अपनी पीड़ा को वरदान मान कर तटस्थ भाव से सहन कर जाता है, मगर पर-पीड़ा उसके लिये असह्य होती है। जैन साधु वह नौका है जो स्वयं तैरती है तथा दूसरों को भी तारती है।

भगवान् महावीर कहते हैं—साधुओ ! श्रमण निर्ग्रन्थों के लिये लाघव-कम-से-कम साधनों से निर्वाह करना, निरीहता-निष्काम वृत्ति, अमूर्छा-अनासक्ति, अगृद्धि, अप्रतिवद्धता, शान्ति, नम्रता, सरलता निर्लोभता ही प्रशस्त है।

जैन भिक्षु के लिये पाँच महाव्रत अनिवार्य हैं। उन्हें रात्रिभोजन का भी सर्वथा त्याग होता है। इन महाव्रतों का भलीभांति पालन किये बिना कोई साधु नहीं कहला सकता। महाव्रत इस प्रकार हैं :—



संभव नहीं है। रात्रि को भोजन आदि में वस जीवों का पड़ जाना प्रायः संभव होने से हिंसा एवं मांसाहार के दोष से प्रायः बचा नहीं जा सकता। इस प्रकार सब दोषों को देखकर ही ज्ञातपुत्र भगवान् महावीर ने कहा है कि “निर्ग्रन्थ मुनि रात्रि को किसी भी प्रकार से भोजन न करे।”

अन्नादि चारों ही प्रकार के आहार (१. अशन—वह खुराक जिससे भूख मिटे, २. पान—वह आहार जिससे प्यास आदि मिटे, ३. साद्य—वह आहार जिससे थोड़ी तृप्ति हो, जैसे फलादि, ४. स्वाद्य—इलायची सुपारी आदि) का रात्रि में सेवन नहीं करना चाहिये। इतना ही नहीं दूसरे दिन के लिये भी रात्रि में साद्य सामग्री का संग्रह करना निषिद्ध है। अतः अहिंसा महाव्रत धारी श्रमण रात्रिभोजन का सर्वथा त्यागी होता है।

२. सत्य महाव्रत—मन से सत्य सोचना, वाणी से सत्य बोलना, और काय से सत्य का आचरण करना तथा मूक्ष्म असत्य का भी प्रयोग न करना, सत्य महाव्रत है।

जैन गायु मन-वचन तथा काया से कदापि असत्य का सेवन नहीं करता। उने मौन रहना प्रियतर प्रनीत होता है, फिर भी प्रयोजन होने पर परिमित, हितकर, मधुर और निर्दोष भाषा का ही प्रयोग करता है। वह बिना मोचे विचारें नहीं बोलता। हिंसा को उत्तेजन देने वाला वचन मुख से नहीं निकालता। हेमी, मजाक आदि बातों में, जिनके कारण अनन्य भाषण की गंनावना रहती है, उगने दूर रहता है।

३. अचोर्व महाव्रत—मुनि गंगार की कोई भी वस्तु, उसके स्वामी की आज्ञा के बिना ग्रहण नहीं करता, चाहे वह शिष्यादि हो, चाहे निर्जोव भ्रातादि हो। दान माग करने के लिये निम्नज जैमी कुछ वस्तु भी मागिक की आज्ञा बिना नहीं देता।

४. ब्रह्मचर्य महाव्रत—जैन मुनि काम वृत्ति और वागना का नियमन करने पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करता है। इस दुर्धर महाव्रत का पालन करने के लिये अनेक नियमों का बर्तव्यता से पालन करना पड़ता है। उन में से कुछ इस प्रकार हैं—





आत्म-साधक बनाने के प्रयत्न में संलग्न रहता है। सर्दी-गर्मी, भूत-प्यास, वर्षा-वृष की भी परवाह न करके वह गतत ध्यान, तप तथा प्राणियों के उपकार के लिये पर्यटक बना रहता है। सब प्रकार के परिपह और उपसर्गों को सहर्ष सहन करते हुए भी अपने जीवनलक्ष्य का त्याग नहीं करता। किसी सूक्ष्म-से-सूक्ष्म प्राणी की भी हिंसा उससे न हो जाय इसके लिये वह सदा सावधान रहता है और इस दोष से बचने के लिये वह अपने पाम सदा 'रजोहरण' रखता है तथा सचेत कच्चा, पक्का अथवा दोष वाला ऐसा वनस्पति का आहार भी कभी ग्रहण नहीं करता। वस्तु के निकम्मे भाग को डालने से किसी एकेन्द्रिय जीव की भी हिंसा न हो जाय इसकी पूरी सावधानी रखकर स्थान को देखभाल कर तथा पूज-प्रमार्जन करके डालता है।

इस प्रकार निर्ग्रथ श्रमण-जैन साधु एकेन्द्रिय से लेकर 'चेन्द्रिय जीव की हिंसा से बचने के लिये सदा जागरूक रहता है।

१. एक ऊनादि नरम वस्तु का गुच्छा, जिससे स्थान साफ़ करने पर जीवादि की हिंसा का बचाव होता है।







भगवान् महावीर को चार वस्त्रों में 'निगण्ड नागपुत्र' के नाम से सम्बोधित किया है । वस्त्रों के 'गुण पिण्ड' नामक फल में निर्ग्रन्थों (जैनों) के मत की कड़ी परीक्षाएँ मिलती हैं । उन्हीं के "मज्झिम निक्काय के मूल दुक्कसल्लस्य सुत्त" नामक प्रश्न में वर्णन है कि नागपुत्र में निर्ग्रन्थ खटे-खटे नगदन्धियाँ कर्तव्य थे । निगण्ड नागपुत्र (महावीर) सर्वज्ञ-सर्वदर्शी थे । चल्ते हुए, खड़े खड़े हुए, सोते हुए या जागते हुए, हर स्थिति में उनकी जातदर्ष्टि कायम रहती थी ।

### भगवान् महावीर का आचार—

भगवान् महावीर पाँच महाव्रतधारी तथा गतिभोजन के सर्वथा त्यागी थे । इन व्रतों का स्वल्प जैन धर्म के आचार में कर आये हैं ।

भगवान् महावीर दीक्षा (गन्धान) लेने के बाद एक वर्ष तक मात्र एक देवद्वय वस्त्र पहिने रहे, तत्पश्चात् सर्वथा नग्न रहते थे । हाथों की हथेलियों में मित्रा ग्रहण करते थे । उनके लिये तैयार किये हुए अन्नादि खाद्यों को वे स्वीकार नहीं करते थे और न ही किसी के निमन्त्रण को स्वीकार करते थे । मत्स्य, मांस, मदिरा, मादक पदार्थ, कन्द, मूल आदि अन्नद्वय वस्तुओं को कदापि ग्रहण नहीं करते थे । प्रायः तस्मिन् तथा ध्यान में ही रहते थे । छः छः मान तक निर्जल उपवास (नव प्रकार की खाने-पाने की वस्तुओं का त्याग) करते थे । दाढ़ी मूँछ के बाल उखाड़ कर केवल लोच करते थे । स्नानादि के सर्वथा त्यागी थे । छंटे-ने-छांटे तथा घड़े-ने-घड़े किसी भी प्राणी की हिंसा न हो जाय इसके लिये वे बहुत मनकंठा पूर्वक सावधानी रखते थे । वे बड़ी सावधानी से चलते-फिरते, उठते-बैठते थे । पानी की बूँदों पर भी नीचे दृष्टा रहती थी । मूँछ-ने-मूँछन जीव का भी नाश न हो जाय इसके लिये बहुत सावधानी रखते थे । भयावते जंगलों, अदृशियों आदि निर्जन जगहों में ध्यानाच्छिन्न रहते थे । वे स्थान इतने भयंकर होते थे कि यदि कोई सांसारिक मनुष्य वहाँ प्रवेश करता तो उसके रोंगटे खड़े हो जाते । जाड़ों में हिमपात



## श्रमण भगवान् महावीर का तत्त्वज्ञान

किसी भी महापुरुष के जीवन का वास्तविक रहस्य जानने के लिये दो बातों की आवश्यकता होती है :—(१) उस महापुरुष के जीवन की वास्तव घटनाएँ और (२) उनके द्वारा प्रचारित उपदेश । वास्तव घटनाओं से आन्तरिक जीवन का यथावत् परिज्ञान नहीं हो सकता । आन्तरिक जीवन को समझने के लिये उनके विचार ही अश्रान्त कसौटी का काम दे सकते हैं । उपदेश, उपदेष्टा के मानस का सार, उनकी आन्तरिक भावनाओं का प्रत्यक्ष चित्रण है । तात्पर्य यह है कि उपदेष्टा की जैसी मनोवृत्ति होगी वैसा ही उनका उपदेश होगा । यह कसौटी प्रत्येक मनुष्य की महत्ता का माप करने के लिये उपयोगी हो सकती है; क्योंकि विचारों का मनुष्य के आचार पर बड़ा प्रभाव पड़ता है । इसलिये एक को समझे बिना दूसरे को नहीं समझा जा सकता । श्रमण भगवान् महावीर के उपदेशों को हम दो विभागों में विभक्त कर सकते हैं । (१) विचार यानी तत्त्वज्ञान (२) आचार यानी आचरण अथवा चरित्र । यहाँ पर उनके विचार अथवा तत्त्वज्ञान का संक्षिप्त परिचय देंगे । केवलज्ञान पाने के बाद भगवान् ने कहा—(१) यह लोक है, उस विश्व में जीव और जड़ दो पदार्थ हैं, इनके अतिरिक्त और तीसरी मौलिक वस्तु है ही नहीं । इसलिये यह कह सकते हैं कि जीव और जड़ के समूह को ही लोक कहते हैं । (२) प्रत्येक पदार्थ सूक्ष्मद्रव्य की अपेक्षा में नित्य है और परमाणु की अपेक्षा में अनित्य-अन्तवान् है । (३) लोकादिक अमृत है । (४) जीव और शरीर भिन्न हैं । जीव शरीर नहीं, शरीर जीव नहीं । (५) जीवात्मा अनादि काल में कर्म में बद्ध है इसलिये वह पुनः पुनः जन्म धारण करती है । (६) जीवात्मा





का आधार मनःकल्पना और अनुमान की भूमिका पर नहीं था, परन्तु उनके प्रवचन में केवलज्ञान द्वारा हाथ में रखे हुए आंखले के समान समस्त विश्व के स्वरूप को प्रत्यक्ष जानकर लोकालोक के मूल तत्त्व-भूत द्रव्य-गुण-पर्याय के त्रिकालवर्ती भावों का दिग्दर्शन था । अथवा आधुनिक परिभाषा में कहा जाए तो उसमें विराट विश्व या अखिल ब्रह्माण्ड (Whole Cosmos) की विधि विहित घटनाएँ (Natural phenomena), उनके द्वारा होती हुई व्यवस्था (Organisation), विधि का विधान और नियम (Law and order) का प्रतिपादन तथा प्रकाशन था ।

---

1. 1950년대 초반에 시작된 '국민소득 100달러 달성'을 위한 경제개발 계획이 수립되었다.  
 2. 이 계획은 주로 수출 중심의 경제 성장을 추구하는 데 중점을 두었다.  
 3. 1960년대에는 '경제개발 5개년 계획'이 수립되어, 수출 주도형 경제 성장을 가속화하였다.  
 4. 이 시기에 '한강의 기적'이라고 불리는 급속한 경제 성장을 경험하였다.  
 5. 1970년대에는 '중화학공업 육성'을 위한 정책이 시행되어, 자동차, 조선, 전자 등 중화학 공업 분야가 크게 성장하였다.  
 6. 1980년대에는 '고도 성장'을 위한 정책이 시행되어, 반도체, 컴퓨터 등 첨단 기술 산업이 크게 성장하였다.  
 7. 1990년대에는 '민주화'와 '자유화'를 위한 정책이 시행되어, 경제 개방과 민주화 운동이 크게 성장하였다.  
 8. 2000년대에는 '신남방 정책'이 시행되어, 동남아시아 등 새로운 시장으로의 진출이 크게 성장하였다.  
 9. 2010년대에는 '신북방 정책'이 시행되어, 중앙아시아 등 새로운 시장으로의 진출이 크게 성장하였다.  
 10. 2020년대에는 '디지털 뉴딜'이 시행되어, 디지털 경제의 성장을 크게 성장하였다.

2000 年 12 月 1 日

1. 2. 3. 4. 5. 6. 7. 8. 9. 10. 11. 12. 13. 14. 15. 16. 17. 18. 19. 20. 21. 22. 23. 24. 25. 26. 27. 28. 29. 30. 31. 32. 33. 34. 35. 36. 37. 38. 39. 40. 41. 42. 43. 44. 45. 46. 47. 48. 49. 50. 51. 52. 53. 54. 55. 56. 57. 58. 59. 60. 61. 62. 63. 64. 65. 66. 67. 68. 69. 70. 71. 72. 73. 74. 75. 76. 77. 78. 79. 80. 81. 82. 83. 84. 85. 86. 87. 88. 89. 90. 91. 92. 93. 94. 95. 96. 97. 98. 99. 100. 101. 102. 103. 104. 105. 106. 107. 108. 109. 110. 111. 112. 113. 114. 115. 116. 117. 118. 119. 120. 121. 122. 123. 124. 125. 126. 127. 128. 129. 130. 131. 132. 133. 134. 135. 136. 137. 138. 139. 140. 141. 142. 143. 144. 145. 146. 147. 148. 149. 150. 151. 152. 153. 154. 155. 156. 157. 158. 159. 160. 161. 162. 163. 164. 165. 166. 167. 168. 169. 170. 171. 172. 173. 174. 175. 176. 177. 178. 179. 180. 181. 182. 183. 184. 185. 186. 187. 188. 189. 190. 191. 192. 193. 194. 195. 196. 197. 198. 199. 200. 201. 202. 203. 204. 205. 206. 207. 208. 209. 210. 211. 212. 213. 214. 215. 216. 217. 218. 219. 220. 221. 222. 223. 224. 225. 226. 227. 228. 229. 230. 231. 232. 233. 234. 235. 236. 237. 238. 239. 240. 241. 242. 243. 244. 245. 246. 247. 248. 249. 250. 251. 252. 253. 254. 255. 256. 257. 258. 259. 260. 261. 262. 263. 264. 265. 266. 267. 268. 269. 270. 271. 272. 273. 274. 275. 276. 277. 278. 279. 280. 281. 282. 283. 284. 285. 286. 287. 288. 289. 290. 291. 292. 293. 294. 295. 296. 297. 298. 299. 300. 301. 302. 303. 304. 305. 306. 307. 308. 309. 310. 311. 312. 313. 314. 315. 316. 317. 318. 319. 320. 321. 322. 323. 324. 325. 326. 327. 328. 329. 330. 331. 332. 333. 334. 335. 336. 337. 338. 339. 340. 341. 342. 343. 344. 345. 346. 347. 348. 349. 350. 351. 352. 353. 354. 355. 356. 357. 358. 359. 360. 361. 362. 363. 364. 365. 366. 367. 368. 369. 370. 371. 372. 373. 374. 375. 376. 377. 378. 379. 380. 381. 382. 383. 384. 385. 386. 387. 388. 389. 390. 391. 392. 393. 394. 395. 396. 397. 398. 399. 400. 401. 402. 403. 404. 405. 406. 407. 408. 409. 410. 411. 412. 413. 414. 415. 416. 417. 418. 419. 420. 421. 422. 423. 424. 425. 426. 427. 428. 429. 430. 431. 432. 433. 434. 435. 436. 437. 438. 439. 440. 441. 442. 443. 444. 445. 446. 447. 448. 449. 450. 451. 452. 453. 454. 455. 456. 457. 458. 459. 460. 461. 462. 463. 464. 465. 466. 467. 468. 469. 470. 471. 472. 473. 474. 475. 476. 477. 478. 479. 480. 481. 482. 483. 484. 485. 486. 487. 488. 489. 490. 491. 492. 493. 494. 495. 496. 497. 498. 499. 500. 501. 502. 503. 504. 505. 506. 507. 508. 509. 510. 511. 512. 513. 514. 515. 516. 517. 518. 519. 520. 521. 522. 523. 524. 525. 526. 527. 528. 529. 530. 531. 532. 533. 534. 535. 536. 537. 538. 539. 540. 541. 542. 543. 544. 545. 546. 547. 548. 549. 550. 551. 552. 553. 554. 555. 556. 557. 558. 559. 560. 561. 562. 563. 564. 565. 566. 567. 568. 569. 570. 571. 572. 573. 574. 575. 576. 577. 578. 579. 580. 581. 582. 583. 584. 585. 586. 587. 588. 589. 590. 591. 592. 593. 594. 595. 596. 597. 598. 599. 600. 601. 602. 603. 604. 605. 606. 607. 608. 609. 610. 611. 612. 613. 614. 615. 616. 617. 618. 619. 620. 621. 622. 623. 624. 625. 626. 627. 628. 629. 630. 631. 632. 633. 634. 635. 636. 637. 638. 639. 640. 641. 642. 643. 644. 645. 646. 647. 648. 649. 650. 651. 652. 653. 654. 655. 656. 657. 658. 659. 660. 661. 662. 663. 664. 665. 666. 667. 668. 669. 670. 671. 672. 673. 674. 675. 676. 677. 678. 679. 680. 681. 682. 683. 684. 685. 686. 687. 688. 689. 690. 691. 692. 693. 694. 695. 696. 697. 698. 699. 700. 701. 702. 703. 704. 705. 706. 707. 708. 709. 710. 711. 712. 713. 714. 715. 716. 717. 718. 719. 720. 721. 722. 723. 724. 725. 726. 727. 728. 729. 730. 731. 732. 733. 734. 735. 736. 737. 738. 739. 740. 741. 742. 743. 744. 745. 746. 747. 748. 749. 750. 751. 752. 753. 754. 755. 756. 757. 758. 759. 760. 761. 762. 763. 764. 765. 766. 767. 768. 769. 770. 771. 772. 773. 774. 775. 776. 777. 778. 779. 780. 781. 782. 783. 784. 785. 786. 787. 788. 789. 790. 791. 792. 793. 794. 795. 796. 797. 798. 799. 800. 801. 802. 803. 804. 805. 806. 807. 808. 809. 810. 811. 812. 813. 814. 815. 816. 817. 818. 819. 820. 821. 822. 823. 824. 825. 826. 827. 828. 829. 830. 831. 832. 833. 834. 835. 836. 837. 838. 839. 840. 84

• 472 •

इस प्रकार गुण को मित्रता मानना और मूर्खता व नीच के कारण व्यक्तियों और मनुष्यों में इस तपसा के, तपसा को नीच मानना है और इसके फलस्वरूप पौष्टिक गुण परतीत होना और तपसा को हास्य व श्लाघन का विषय माना प्रकट करती है और तपसा के भी देना । इस तरह दिया और प्रतिदिया का ऐसा विचार कीया हो जाता है कि व्यंग्य मयार के गुण को ग्रास ही नष्ट कर देता है । दिया के इस भयानक स्वभाव के विचार में महावीर ने अहिंसात्मक में ही समस्त भयों का, समस्त कष्टों का और प्राणिमाय की दानि का मूल दया । यह विचार कर उन्होंने वैराग्य को तथा कायिक और मार्गात्मिक दायों में हानि वाली दिया को रोकने के लिये तप और संयम का अवलम्बन लिया ।

संयम का सम्बन्ध मुख्यतः मन और वचन के माथ होने के कारण उन्होंने ध्यान और मोन को स्वीकार किया । भगवान् महावीर के माधक-जीवन में संयम और तप यही दो बाने मुख्य हैं और उन्हें मिद्ध करने के लिये उन्होंने साढ़े बारह वर्षों तक जो प्रयत्न किया और उममें जिस तत्परता और अप्रमाद का परिचय दिया वैसा आज तक की तपस्या के इतिहास में किसी व्यक्ति ने दिया हो, वह दिगलार्ई नहीं देता । गौतम बुद्ध आदि ने महावीर के तप को देह-दुःख और देहदमन कह कर उसकी अवहेलना की है । परन्तु यदि वे सत्य तथा न्याय के लिये भगवान् महावीर के जीवन पर तटस्थता से विचार करते तो उन्हें यह मालूम हुए बिना कदापि न रहता कि भगवान् महावीर का तप शुष्क देहदमन नहीं था । वे संयम और तप दोनों पर समान रूप से जोर देते थे । वे जानते थे कि यदि तप के अभाव से सहनशीलता कम हुई तो दूसरों की सुखसुविधा की आहुति देकर अपनी सुखसुविधा बढ़ाने की लालसा बढ़ेगी और उसका फल यह होगा कि संयम न रह पायेगा । इसी प्रकार संयम के अभाव में कोरा तप भी पराधीन प्राणी पर अनिच्छा पूर्वक आ पड़े देह कष्ट की तरह निरर्थक है ।

ज्यों-ज्यों संयम और तप की उत्कटता से महावीर अहिंसातत्त्व के





한글을 배우는 것은 매우 중요하고, 이를 잘 익히는 것은 매우 중요하다. 한글을 배우는 것은 매우 중요하고, 이를 잘 익히는 것은 매우 중요하다.

한글을 배우는 것은 매우 중요하고, 이를 잘 익히는 것은 매우 중요하다. 한글을 배우는 것은 매우 중요하고, 이를 잘 익히는 것은 매우 중요하다.

한글을 배우는 것은 매우 중요하고, 이를 잘 익히는 것은 매우 중요하다.

한글을 배우는 것은 매우 중요하고, 이를 잘 익히는 것은 매우 중요하다. 한글을 배우는 것은 매우 중요하고, 이를 잘 익히는 것은 매우 중요하다.

한글을 배우는 것은 매우 중요하고, 이를 잘 익히는 것은 매우 중요하다. 한글을 배우는 것은 매우 중요하고, 이를 잘 익히는 것은 매우 중요하다.

한글을 배우는 것은 매우 중요하고, 이를 잘 익히는 것은 매우 중요하다. 한글을 배우는 것은 매우 중요하고, 이를 잘 익히는 것은 매우 중요하다.



三 三 三

...  
...  
...  
...  
...

...  
...  
...  
...  
...

...  
...  
...  
...  
...

...  
...  
...  
...  
...  
...  
...  
...  
...  
...  
...

...  
...  
...  
...  
...  
...  
...  
...  
...  
...  
...











भगवान् बोले—“मोक्ष ! यह जन्म पूर्व जन्म में अण्डों का व्यापारी था । स्वयं भी माय-अण्डे आदि भक्षण करता था उमका नाम निहङ्क था और अण्डों के व्यापार के कारण यह निहङ्क अण्डे खाने के नाम से प्रसिद्ध हो गया था । उमने इस काम के लिए नौकर रखे हुए थे, जो मायों, मुर्गों, कबूतरों आदि के अण्डे गरीब कर खाने और बाजार में जाकर बेचना करने थे । वह स्वयं भी अण्डों का भूतना, नलना और माला था । शराब पीकर नशे में चूर रहता था । भगवान् बोले—हे मोक्ष ! यह उतना पापी था जिनके फलस्वरूप अपने जीवन के दिन पूरे कर वह तीमरी नरक में जाकर पैदा हुआ । वहाँ दारुण दुःख भोग कर यहाँ विजय चौर के घर जन्मा है । इस जन्म में भी अपने किये का फल भोग रहा है ।

इन उपयुक्त उद्धरणों से भगवान् महावीर के आदर्श अहिंसामय जीवन का और उनके द्वारा प्रदत्त अहिंसा के उपदेश का पूरा-पूरा परिचय मिल जाता है ।

इससे स्पष्ट है कि श्रमण भगवान् महावीर ने अपने इन विचारों को स्वयं अपने आचरण में उतारा और फिर मानव समाज को प्राणी मात्र की अहिंसा का अपनी वाणी और करणी द्वारा प्रभावोत्पादक उपदेश दिया । इसी के परिणाम स्वरूप आज भी जैन अहिंसा विश्व में अलौकिक स्थान रखती है ।



## जैन मांसाहार से सर्वथा अलिप्त

इस उपर्युक्त विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि श्रमण भगवान् महावीर सर्वज्ञ-सर्वदर्शी थे । उनके आचार और विचार यहां तक पवित्र थे कि जत्र वे अजीव पदार्थों का भी इस्तेमाल (उपयोग) करते थे तो इस बात की पूरी मावधानी रखते थे—“मेरे द्वारा किसी छोटे से छोटे प्राणी को भी कष्ट न पहुंचे ।”

इस विश्वविभूति ने जगत के प्राणियों को जिस अहिंसा के महान् पवित्र मिद्धान्त का उपदेश दिया था उसका आचरण उनके रोम-रोम में था । अर्थात् जो कुछ वे जगत के प्राणियों को आचरण करने के लिये उपदेश देते थे उसको वे स्वयं भी पालन करते थे । उनके रोम-रोम और शब्द-शब्द ने विश्व के प्रत्येक प्राणी के प्रति वात्सल्य भाव प्रगट होता था । उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद सर्वप्रथम यही उपदेश दिया था—“मा हण-मा हण (मत मारो-मत मारो)” अर्थात् किसी भी प्राणी को हिंसा मत करो और इसी उपदेश के अनुसार ही जो उनके धर्म-मार्ग को स्वीकार करना था, उसे वे सर्वप्रथम जीव-हिंसा का त्याग रूप “प्राणति-पान विरमण वत” धारण करते थे । फिर वह चाहे श्रमण हो अथवा श्रावक । इस का विवेचन हम पहले कर आये हैं ।

श्रमण भगवान् महावीर की अहिंसा के विषय में भारत के महान् धार्मिकशास्त्री सर अन्नाजी कृष्ण स्वामी अय्यर ने एक तार्किक दृष्टिकोण देा था । उन्होंने कहा था कि मैं धारा शास्त्र का अनुयायी होने से दार्शनिक सम्प्रदाय में विशेष अध्ययन का लाभ नहीं































## बौद्ध-जैन संवाद में मांसाहार निषेध

जैनागम मूलग्रन्थों के दूसरे श्रुत स्कन्ध के छोटे अध्ययन में एक प्रसंग आता है जो इस प्रकार है:—

श्रम भगवान् महावीर का चतुर्मास राजगृह में था। चतुर्मास के बाद भी भगवान् राजगृह में धर्मप्रचारार्थ ठहरे। उस सतत प्रचार का आभास ही फट हुआ।

एक बार भगवान् के शिष्य आर्द्रकमुनि भगवान् को वन्दन करने के लिए गुणगीत चैत्य में जा रहे थे। रास्ते में उनका शाल्यमुनि के भिक्षा ने इस प्रकार वार्तालाप हुआ। उस वार्तालाप में जीवहिंसा और मांसाहार सम्बन्धी जैनों का क्या मिथ्यात्व है, इसका भी खुलासा आर्द्रकमुनि ने किया है जो इस प्रकार है:—निर्ग्रन्थ आर्द्रकमुनि ने शाल्यमुनि के भिक्षा











॥ ॥ ॥

महाराज महाराज महाराज महाराज  
महाराज महाराज महाराज महाराज





द्वे कृष्णान्डकलदारीरे उपस्कृते, न च ताभ्यां प्रयोजनं, तथाऽन्यदस्ति  
नरमुते परिचासितं मार्जारविधानस्य वायोनिवृत्तिकारकं कुक्कुडमांसकं  
-जीवतूरकदाहमित्यर्थः, तदाहर तेन नः प्रयोजनमिति ।”

(ठाणांग सू० १९१)

अर्थात्—“तुम नगर में जाओ, खैनी नाम की मृदुपति की भार्या  
ने मर दिष्ट दो कृष्णान्ड फल (पेठे) गंगाजल करके तैयार किये हैं,  
जससे प्रयोजन नहीं, परन्तु उसके घर में मार्जार नामक वायु की निवृत्ति  
करने का जो विज्ञोमे फल का गुण है, वह के आश्रा। उसका मुझे प्रयोजन  
है । (ठाणांग सू० १९१)

इस वाक्य का अर्थ से यह जान सकते हैं कि ठाणांग जी ग्रन्थ में इन  
शब्दों का अर्थ श्रीजगन्नाथदेवदास ने स्पष्ट रूप से वनस्पतिपरक किया है  
इससे हमें इसी अर्थ का अर्थ रूप में उत्पन्न मान्य था ।

( ४ )









जो देवचंद्र लालभाई पुस्तकालय फंड गूरत में प्रकाशित हो चुका है। उसके प्रस्ताव ८ पृष्ठ २८२, २८३ में वर्तमान चर्चास्पद विषय पर प्रकाश डालता हुआ वर्णन है। वहाँ सिंह अणभार की प्रार्थना में कल्प्य ओषधि स्वीकार करने के लिए भगवान् महावीर सम्मन होने पर भी "अपने निमित्त में नैयार की हुई ओषध नहीं कल्पती," ऐसा माधुगामाचारी-मर्यादा को अपने आचरण में सूचित करने हैं।

"जइ एवं ता इहेच नयरे रेवईए गाहावइणीए समीव वच्चाहि। ताए य मम निमित्तं जं पुअ ओमहं उववत्तडियं तं परिहरिऊण इयरं अप्पणी निमित्तं निप्फाइयं आणेहि त्ति।"

भावार्थ—[हे सिंह !] यदि ऐसा ही है तो इसी नगर में (मंडिक ग्राम में) रेवनी नाम की गृध्रपति की पत्नी के समीप जा, उसने मेरे निमित्त जो पढ़ये ओषध नैयार की हुई है उसे छोड़ कर दूसरी (ओषध) जो उसने अपने लिये नैयार की हुई है, वह लाना। भगवान् महावीर के लिये ओषधदान देने में इन भक्त श्रद्धालु की देवगति हुई, इत्यादि वहाँ विस्तृत वर्णन है।

(३)

स्वतंत्र संस्कृत-प्राकृत शब्दानुशासन, कोश, काव्य, साहित्य रचने वाले गुप्तिनन्द कलिकाण्ठमवंज आचार्य श्री हेमचन्द्र ने विक्रम की तरहवीं शताब्दी में "त्रिपण्डितशलाकापुष्पचरित्र" महाकाव्य रचा है, जिसके दसवें पर्व में लगभग छह हजार श्लोकप्रमाण भगवान् महावीर का चरित्र है। यह ग्रन्थ भावनगर से जैनधर्म प्रचारक मभा ने विक्रम संवत् १९६५ में प्रकाशित किया है। उनके आठवें शत के श्लोक ५४९ में ५५२ में चालू चर्चास्पद विषय पर स्पष्ट प्रकाश डाला है।

मादृशां दुःखशान्तये तत् स्वामिन्नादत्स्व भेषजम्।

स्वामिनं पीडितं द्रष्टुं, नहि क्षणमपि क्षमाः॥५४९॥



समय के सभी जैन आचार्य इस औपधदान को वनस्पतिपरक ही मानते थे । इस बात की पुष्टि के लिये और भी अनेक उल्लेख मिलते हैं । परन्तु विस्तारभय ने इतने प्रमाण देना ही पर्याप्त हैं । मुझे कि बहुना ?

इस विवेचन ने यह भी स्पष्ट है कि जैनाचार्य हजारों वर्षों से इन शब्दों का अर्थ 'वनस्पतिपरक' ही करते आये हैं । अतः निगण्ट नायपुत (श्रमण भगवान् महावीर) ने अपने रोग की शान्ति के लिये अथवा अन्य भी किसी समय मांसाहार कदापि ग्रहण नहीं किया । भगवान् महावीर के विषय में भगवती मूय के इस एक उल्लेख के अतिरिक्त अन्य कोई भी ऐसा उल्लेख जैनागमों अथवा जैन साहित्य में नहीं पाया जाता जिससे उनके विषय में मांसाहार करने की आज्ञा का होना संभव हो । इस चर्चास्पद मूयपाठ में भी यह बात स्पष्ट है कि इन शब्दों का अर्थ मांसपरक नहीं किन्तु वनस्पतिपरक है ।

( २ )

### इस औपधदान पर दिगम्बर जैनों का मत

दिगम्बर जैन मंत्रदाय के विद्वान् भी रेवती (मंडिक ग्राम वाली) के इस औपधदान की मूर्ति-मूर्ति प्रशंसा करते हैं । रेवती ने जो तीर्थंकर नामरुमें उपाजंन लिया, उपाज कारण भी यह औपधदान ही था, ऐसा कहते हैं । यह स्पष्ट यह है ।

“रेवतीश्राविसया श्रौवीरस्य औपधदानं दत्तम् । तेनोपधदान-  
कालेन तीर्थंकरनामरुमोपाजंनत एव औपधदानमपि दातव्यम् ।”

( हिंदी जैन साहित्य प्रमाण कार्यलय बम्बई की जैन चरितमाला  
नं० ६ )







वैदावृत्य करना (गुणवान को जड़नाई में से निकालना) । १०-११-१२-१३—अरिहंत, जानागं, ननुश्रुत और मास्य के प्रति शुद्ध निष्ठापूर्वक अनुराग रगना । १४. आवश्यक किंवा को न छोड़ना (सामायिकादि छः आवश्यकों का पालन करना) । १५. माध्मागं की प्रभावना (आत्मा के कल्याण के मार्ग को अपने जीवन में उतारना तथा दूसरों को उसका उपदेश देकर धर्म का प्रभाव बढ़ाना) । १६. प्रवचनवात्सल्य (वीतराग सर्वज्ञ के वचनों पर स्नेह-अनन्य अनुराग होना) ।

इन उपर्युक्त कार्यों में से एक अथवा अधिक कार्यों को करने से जीव तीर्थंकर पद को प्राप्त करने योग्य कर्म का बन्धन करता है । इस कर्म का नाम है तीर्थंकर नामकर्म ।

वीस स्थानकों का वर्णन ज्ञाताधर्म कयांग आदि आगमों में—

“अरिहंत-सिद्ध-पवयण-गुरु-येर-बहुस्सुय-तवस्सीसु ।

वच्छल्लया य तेसि अभिक्खणाणोवओगे य ॥१॥

दंसण विणए आवस्सए य सीलव्वए निरइयारे ।

खणलव तवाच्चियाए वेयावच्चे समाही य ॥२॥

अप्पुव्वणाण गहणे सुयभत्ती पवयणे पभावणया ।

एएहि कारणेहि तित्थयरत्तं लहइ जीवो ॥३॥

(ज्ञाताधर्म कयांग अ० ८ सूत्र ६४)

अर्थात्—१—अरिहंतभक्ति, २—सिद्धभक्ति, ३—प्रवचनभक्ति, ४—स्थविर (आचार्य) भक्ति, ५—बहुश्रुतभक्ति, ६—तपस्वी वत्सलता, ७—निरन्तर ज्ञान में उपयोग रखना, ८—दर्शन (सम्यक्त्व) को शुद्ध रखना, ९—विनय सहित होना, १०—सामायिक आदि छः आवश्यकों का पालन करना, ११—अतिचार रहित शील और व्रतों का पालन करना, १२—संसार को क्षणभंगुर समझना, १३—शक्ति अनुसार तप करना, १४—शक्ति अनुसार त्याग (दान) करना, १५—शक्ति अनुसार चतुर्विध संघ की तथा साधु की समाधि करना, (वैसा करना जिससे वे





को प्राप्त करने के पश्चात् बीस अथवा सोलह भावनाओं में से किसी भी एक-दो अथवा अधिक भावनाओं के द्वारा तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन कर सकता है । सम्यग्दर्शन के अभाव से मिथ्यादृष्टि अन्य किन्हीं भी भावनाओं को आचरण में लाता हुआ कदापि तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन नहीं कर सकता ।

तीर्थंकर भगवान् का संक्षिप्त आचार तथा विचार जानने के लिए देखें प्रथम खण्ड में स्तम्भ नं० ४ मे ७ तक । इन सत्र स्तम्भों को पढ़ने मे पाठक स्वयं जान सकेंगे कि तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ-सर्वदर्शी भगवान् महावीर स्वामी के आचारों तथा विचारों का अवलोकन करने से यह बात स्पष्ट है कि वे कभी भी माँसाहार को ग्रहण नहीं कर सकते थे ।



इस औषध को सेवन करने वाले, औषध लाने वाले तथा औषध बनाने और देने वाली का जीवन परिचय

१—वीतराग, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, तीर्थंकर भगवान् वर्धमान-महावीर स्वामी ने रक्त-पित्त (पेचिश) तथा पित्तज्वर की व्याधि को मिटाने के लिए इस औषध का सेवन किया। २—निर्ग्रन्थ श्रमण सिंह ने यह औषध लाकर दी। ३—रेवती श्राविका ने इस औषध को अपने घरके लिए बनाया और सिंह मुनि को भगवान् महावीर के रोगशमन के लिए प्रदान किया।

१—सर्व प्रथम श्रमण भगवान् महावीर के सम्बन्ध में विचार करते हैं—

भगवान् महावीर गौतम बुद्ध के समकालीन थे। दोनों श्रमण संप्रदाय के समर्थक थे। फिर भी दोनों के अन्तरको जाने बिना हम उनके आचार-विचार सम्बन्धी किसी नतीजे पर नहीं पहुँच सकते।

(क) पहला अन्तर तो यह है कि बुद्ध ने महाभिनिष्क्रमण से लेकर अपना नया मार्ग-धर्मचक्र प्रवर्तन किया, तब तक के छः वर्षों में उस समय प्रचलित भिन्न-भिन्न तपस्वी और योगी संप्रदायों का एक-एक करके स्वीकार-परित्याग किया। अन्त में अपने विचारों के अनुकूल एक नया ही मार्ग स्थापित किया, जबकि महावीर को कुलपरम्परा से जो धर्म-मार्ग प्राप्त था वह उसे लेकर आगे बढ़े और उस धर्म में अपनी साहजिक विशिष्ट ज्ञानदृष्टि और देश व कालकी परिस्थिति के अनुसार सुधार या शुद्धि की। बुद्ध का मार्ग नया धर्म-स्थापन था तो महावीर का मार्ग प्राचीन काल में चले आते हुए जैनधर्म को पुनःसंस्कृत करने का था।



वाध्य होना पड़ा, जिससे उनके जीवन में न तो खान-पान सम्बन्धी संयम ही रहा और न तप ही रहा। जिनके परिणाम स्वरूप वे अहिंसा-तत्त्व से अधिकाधिक दूर होते गये।

परन्तु महावीर का तप युक्त देहदमन नहीं था। वे जानते थे कि यदि तप के अभाव में महनशीलता कम हुई तो दूसरों की मुख-मुविधा की आदृति देखकर अपनी मुख-मुविधा बढ़ाने की लाजसा बढ़ेगी और उमका फल यह होगा कि संयम न रह पायेगा। इसी प्रकार संयम के अभाव में कोरा तप भी देहकण्ट की तरह निरर्थक है।

( ३ ) ज्यों-ज्यों भगवान् महावीर संयम और तप की उत्कटता में अपने आप को निगारने लगे, त्यों-त्यों वे अहिंसान्तव के अधिकाधिक निष्ठ पहुँचने लगे, त्यों-त्यों उनकी गम्भीर शानि बढ़ने लगी और उमका प्रभाव आम-पान के लोभों पर अपने आप पड़ने लगा। मानस साम्य के नियम के अनुसार एक व्यक्ति के अन्दर बलवान् होने वाली वृत्ति का प्रभाव आम-पान के लोभों पर ज्ञान-अज्ञान में हुए बिना नहीं रहता। परन्तु बद्ध तप और संयम की त्याग देने के कारण अहिंसा तत्त्व को पूर्ण रूप से अपने जीवन में उतारने में असमर्थ रहे। उनका अहिंसा तत्त्व जड़संसार बन कर रह गया। परन्तु अपने ओर अपने अनुयायियों के आकर्षण में इसे पूर्ण रूप से न उतार सके। अतः उनका यह अहिंसा निदान शोका होकर रह गया।



क्योंकि उन समय निर्ग्रन्थ परम्परा का बहुत प्राधान्य था । उनके तप और त्याग में जनना अकृष्ट होंगे थी, जिनमें निर्ग्रन्थों के प्रति उनका अधिक झुकाव व बौद्ध धर्मानुयायियों में आचार की शिथिलता को देखकर वह प्रश्न कर उठती थी कि आप तप को अटेलना क्यों करते हैं ? तब बुद्ध को अपने शिथिलाचार को पुष्टि के लिये अपने पक्ष की गफाई भी पेश करनी थी और लोगों को अपने मन्तव्यों की तरफ गेंचना भी था । इस लिये वे निर्ग्रन्थों की आध्यात्मिक तपस्या को केवल कष्टमात्र और देहदमन बतला कर कड़ी आलोचना करने लगे ।

( ब ) भगवान् महावीर ने जीवात्मा को चैतन्यमय स्वतन्त्र तत्त्व माना है । अनादिकाल से यह जीवात्मा कर्मबन्धनों में जकड़ी हुई आवा-गमन के चक्कर में फँसी हुई पुनः-पुनः पूर्व देह त्यागरूप मृत्यु तथा नवीन देह प्राप्तिक्रम जन्म धारण करती है । जीवात्मा शाश्वत है, इसमें चेतना रूप ज्ञान-दर्शनमय गुण हैं और कर्मों को क्षय करके शुद्ध पवित्र अवस्था को प्राप्त कर निर्वाण अवस्था प्राप्त कर सदा के लिये जन्ममरणरहित होकर शुद्ध स्वरूप में परमात्मा बन जाती है । अतः आत्मा, परमात्मा, पाप, पुण्य, परलोक आदि को मानकर जैन दर्शन ने 'आत्मा है, परलोक है, प्राणी अपने शुभाशुभ कर्म के अनुसार फल भोगता है', इत्यादि सिद्धान्त स्वीकार किया है । भगवान् महावीर के तत्त्वज्ञान का परिचय हम प्रथम खण्ड के पाँचवें स्तम्भ में लिख आये हैं । उससे हमें स्पष्ट ज्ञात होता है कि ऐसे विचार वाला व्यक्ति किसी भी प्राणी का मांस भक्षण नहीं कर सकता ।

परन्तु बुद्ध ने क्षण-क्षण परिवर्तनशील मन के परे किसी भी जीवात्मा को नहीं माना । मरने का मतलब है मनका च्युत होना । बौद्ध दर्शन अपने आप को अनात्मवादी और अनौद्वरवादी मानता है । उसका कहना है कि "आत्मा कोई नित्य वस्तु नहीं है परन्तु ग्रास कारणों से स्कंधों ( भूत, मन ) के ही योग से उत्पन्न एक शक्ति है, जो अन्य बाह्य भूतों की भाँति क्षण-क्षण उत्पन्न और विलीन हो रही है । चित्त, विज्ञान, आत्मा









रणाम-गोत्ते णं कम्मे णिव्वतिते, (१) सेणितेणं, (२) सुपासेणं, (३) उदात्तिणा (४) पोट्टिलेणं अणगारेणं, (५) दढाउणा, (६) संत्तेणं, (७) सत्तगेणं, (८) सुलसाए, (९) साविकाते रेवतीते” ।

(ठाणांग सूत्र सू० ६९१)

श्रीअभयदेवमूरिकृत टीका :—

“तथा रेवती भगवत औपधदात्री.....रेवती च बहुमानं कृतार्थमात्मानं गन्धमाना यथायाचितं तत्पात्रे प्रक्षिप्तवती । तेनाप्यानीय तद् भगवतो हस्ते विसृष्टं । भगवतापि वीतरागतयैवोदरकोष्ठे निक्षिप्तं, ततस्तत्क्षणमेव क्षीणो रोगो जातः” (ठाणांग सूत्र पाठ की टीका)

अर्थात्—१—श्रमण भगवान् महावीर की सुलसा, रेवती प्रमुख तीन लाख अठारह हजार श्राविकाओं की उत्कृष्ट संख्या थी ।

२—उनमें से गृहपति की भार्या रेवती श्राविका ने सिंह अनगार को शुद्ध द्रव्य दान देने से देवायु का बन्ध किया और जन्म-मरण रूप संसार का भी अन्त किया (मोक्ष प्राप्त करेगी)

३—श्रमण भगवान् महावीर के जीवनकाल में उनके तीर्थ में नौ प्राणियों ने तीर्थकर नामगोत्र का बन्ध किया । जिनके नाम हैं—(१) श्रेणिक, (२) सुपाश्वं, (३) उदायी, (४) पोट्टिल अनगार, (५) दृढायु, (६) शंस, (७) शतक, (८) सुलसा तथा (९) श्राविका रेवती ।

इन में से श्राविका रेवती, जो कि (निगण्ठ नायपुत्त) श्रमण भगवान् महावीर को औपध दान देने वाली थी । उस औपध दान देने के कारण उत्तने तीर्थकर नामकर्म का उपार्जन किया—यानी जिस कर्म के प्रभाव से अगले जन्म में वह तीर्थकर पद प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करेगी । ऐसी रेवती श्राविका ने अपने आप को कृतार्थ मानते हुए सिंह मुनि (अनगार) के द्वारा मांगी हुई औपध को मुनि के पात्र में डाल दिया । उस मुनि ने भी (वह औपध) ला कर भगवान् के हाथों में रख दी । श्रमण भगवान् महावीर ने भी वीतरागता पूर्वक उसे गायी और उन का रोग दान्त हुआ ।



श्रीमाल, पोरवाल आदि वर्गों की स्थापना की, जो तब से लेकर आज तक कट्टर निरामिषाहारी हैं ।

५--मारवाड़, मेवाड़, गुजरात आदि प्रदेशों में जहाँ पर अनेक गीतार्थ निर्गर्थों ने जैनधर्म का अनेक शताब्दियों तक प्रचार किया, उनके उपदेशों के प्रभाव से इन सब प्रदेशों की अधिकतर जनता निरामिषाहारी है ।

इस से निःसंकोच स्वीकार करना पड़ता है कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी (निगमंठ नायपुत्त) की अहिंसा में यदि मत्स्य-मांस आदि अभक्ष्य पदार्थों के भक्षण करने की आज्ञा होती तो जैनधर्मावलम्बी तथा उन के प्रभाव वाले क्षेत्र में भी आज मत्स्य-मांस आदि अभक्ष्य पदार्थ भक्षण करने की शिथिलता आये बिना कदापि न रहती ।



वात उन्हें मालूम न होने में जैनों पर ऐसा आक्षेप न किया हो !

परन्तु प्रथम तो यह बात ही अगंभव है कि जैनों के ग्रंथ किमी भी अन्य धर्मावलम्बी ने न देखे-पढ़े हों। वीद्व पिठकों तथा अन्य मंत्रदायों के धर्मग्रंथों से स्पष्ट पता चलता है कि अनेक निर्ग्रन्थ श्रमणों ने जैनधर्म को त्याग कर अन्य मंत्रदायों को अङ्गीकार किया। ऐसी अवस्था में ऐसे लोगों ने जैन धर्म छोड़ने में पहले जैन शास्त्रों का पठन-पाठन, श्रवण आदि अवश्य किया ही होगा और निर्ग्रन्थचर्या का पालन भी किया ही होगा। अतः वे लोग जैन आचार-विचारों से पूर्णरूपेण परिचित थे। जैनधर्म का त्याग करने के बाद जैनधर्म के प्रति उनका अन्यादर होना भी निश्चित है। ऐसी अवस्था में यदि जैन तीर्थंकर, निर्ग्रन्थ-श्रमण एवं श्रमणोपासकों के मान-मन्स्यादिभक्षण करने का वर्णन जैनाग्रमों में होता, अथवा वे ऐसा अमर्त्य भक्षण करने होते, तो इसके लिए अन्य धर्मों को स्वीकार करने वाले जैनधर्म के विरोध में अवश्य मांसाहार का आक्षेप करने ।

दूसरी बात यह है कि इन तर्कोंवादीयों की यह बात मान भी ली जाय कि जैनैतर विद्वानों के हाथ में जैन शास्त्र न आने में वे उन शास्त्रों में पूर्णरूपेण अनभिज्ञ रहे, इसलिए वे लोग जैनधर्मियों के मांसाहार करने की आलोचना न कर पाये। इस बात के ऊपर में हमें इनका ही कहना है कि यह बात तो निःसन्देह ही है कि जैनधर्मावलम्बीयों के आचरण में तो सब देशवासी परिचित थे। यदि जैनधर्मावलम्बीयों में किसी भी मर्त्य किसी भी रूप में मांस-मन्स्याहार का प्रवृत्त होना तो वे जैनों पर इसका अवश्य आक्षेप करने ।

८—दूसरी प्रकार प्रतीत अवस्था तर्कित तो भी जैनधर्म में अन्य धर्म-प्रवृत्त रहे, उन सब में जैन धर्म की कटे वाकों की आलोचना की जाती आक्षेप भी किया होता, किन्तु किसी भी धर्म-मंत्रदाय के विद्वानों ने जैनों पर मांसाहार का आक्षेप कभी नहीं किया।

९—यदि मान लें कि जैनैतर अवस्था तर्कित निर्ग्रन्थ-श्रमण युक्त चर्या





## तथागत गौतम बुद्ध की निर्ग्रन्थ अवस्था की तपश्चर्या में मांसाहार को ग्रहण न करने का वर्णन ।

हम इस निबन्ध के प्रथम गण्ट के नवमे स्तम्भ में लिये आये हैं कि गौतम बुद्ध ने कुछ काल तक निर्ग्रन्थ अवस्था में रह कर निर्ग्रन्थ परम्परा-मान्य तपश्चर्या को किया था । उगमें बुद्ध ने स्वयं कहा है कि मैं—१—मत्स्य-मांस-सुरा आदि वस्तुएँ नहीं लेता था । २—बैठे हुए स्थान पर बिछे हुए अन्न को और ३—अपने लिये तैयार किये हुए अन्न को ग्रहण नहीं करता था, इत्यादि । (मज्झिम निकाय महासीहनाद सुत्त)

इससे यह फलित होता है कि १—यदि बुद्ध के समय निर्ग्रन्थ परम्परा में मांसाहार का प्रचार होता तो गौतम बुद्ध निर्ग्रन्थचर्या का पालन करते समय के वर्णन में कदापि यह न कहते कि “मैं मत्स्य-मांस-सुरा आदि का सेवन नहीं करता था” । २—क्योंकि बुद्धत्व प्राप्त करने के बाद तो बुद्ध तथा उनके भिक्षु मांसाहार करते थे, तब जैन आदि अन्य पंथों वाले, जो इन अभक्ष्य पदार्थों का सेवन नहीं करते थे, वे बौद्धों पर इस शिथिलता के लिये आक्षेप भी किया करते थे । यदि निर्ग्रन्थ परम्परा में मांसाहार का प्रचार होता तो गौतम बुद्ध अपने वचन के लिये जैनों को उत्तर में यह अवश्य कहते पाये जाते कि तुम भी तो मांसाहार करते हो ? किन्तु ऐसा आक्षेप बौद्ध ग्रंथों में कहीं भी उपलब्ध नहीं होता । ३—यदि निर्ग्रन्थ परम्परा में मांसाहार का सर्वथा निषेध न होता तो सम्भवतः गौतम बुद्ध निर्ग्रन्थ वर्ग को त्याग करने की आवश्यकता प्रतीत न करते । उन्होंने निर्ग्रन्थचर्या की इस कठोरता के पालन करने में अपने-आप को असमर्थ पाया ; इसलिये उन्हें इस मार्ग को छोड़े बिना अन्य कोई उपाय







यहाँ पर हमने भगवान् महावीर के रोग, उसके होने के कारण, लक्षण, तथा अपथ्य आदि का विस्तृत स्वरूप वर्णन कर दिया है; जिस का संक्षेप इस प्रकार है ।

गोशालक के तेजोलेश्या छोड़ने पर उस के तीव्र ताप के कारण भगवान् को अथोगामी रक्त-पित्त, तथा रक्तातिसार हो जाने के कारण खून की टट्टियाँ लग गयी थीं । पित्तज्वर तथा दाहरोग भी थे, जिनके कारण तीव्र ज्वर तथा शरीर में बहुत अधिक जलन भी थी । ये रोग गरम, स्निग्ध, भारी पदार्थ तथा खट्टे, खारे, कड़वे पदार्थों के सेवन से बढ़ते हैं ।

हम यहाँ पर इस बात का विचार करेंगे कि इस रोग में मांसाहार लाभकारी है अथवा घातक ?

मांस के गुण और दोष—

"स्निग्धं, उष्णं, गुरु, रक्त-पित्तजनकं वातहरं च ।

सर्वमांसं वातध्वंसि वृष्यं ॥"

अर्थात्—मांस स्निग्ध, गरम, भारी, रक्त-पित्त को पैदा करने वाला तथा वात को दूर करने वाला है । सब प्रकार के मांस वातहर तथा भारी है ।

यदि भगवान् महावीर के रोग का विचार करें तो यह बात निर्विवाद सिद्ध हो जाती है कि मुर्गे का मांस इस रोग को निवारण नहीं कर सकता, क्योंकि मांस इस रोग को उत्पन्न तथा वृद्धि करने वाला है; यह आयुर्वेद शास्त्र का स्पष्ट मत है ।

अतः इस में यही फलित होता है कि भगवान् महावीर पर मांसाहार का दोष लगाना नितान्त अनुचित है ।

इस लिये रेवती आश्विना द्वारा इस औषध दान में जो द्रव्य दिया गया था वह कुकट्ट मांस (मुर्गे का मांस) कदापि नहीं था, किन्तु कोई वनस्पति विशेष थी । वह औषध कोतनी थी इस का निर्णय हम आगे करेंगे ।



मन में दिखलाई देते हैं । परन्तु कच्चे आम में ये अंग मूक्षम अवस्था में होने के कारण अलग-अलग दिखलाई नहीं देते । उन मूक्षम केसर आदि का समग्र व्युत्पत्ति रूप देता है ।

४--मांसादि शब्दों के अंग्रेजी कोशकारों के अर्थ

मांस (मंसकृत) - 1—Flesh. स्नायु का समूह ।

2—The flesh of fish. मछली का मांस ।

3—The fleshy part of a fruit. फल का मृदा, पिसी अथवा नरम भाग ।

(आटेकृत मंसकृत-अंग्रेजी डीक्शनरी पृ० ७१३)

Flesh अर्थात्—मांस इस शब्द का अर्थ निम्न है—

1—The muscular part of animal.

प्राणी का स्नायु ।

2—Soft pulpy substance of fruit.

फल का नरम भाग, मृदा ।

3—That part of root, fruit etc, which is fit to be eaten.

मूला, फल आदि में जो भाग खाया जा सके, वह भाग ।

4—The soft part of a plant.

पौधे का नरम भाग ।

5—The soft part of a body.

शरीर का नरम भाग ।

6—The soft part of a thing.

वस्तु का नरम भाग ।

7—The soft part of a person.

8—The soft part of a thing.

9—The soft part of a thing.

10—The soft part of a thing.





आमिषं पले ॥ १३३० ॥ सुन्दराकाररूपादौ सम्भोगे लोभ-  
लञ्चयोः । ( अनेकायं )

अर्थ—आमिष—मांस, सुन्दराकार रूप आदि, सम्भोग, लोभ और  
रिशयत है।

‘पल’ शब्द का अर्थ आजकल एक तरह का तोल, काल विगां  
और मांस के अर्थ में प्रसिद्ध है। परन्तु पहले इसके निम्न अर्थ समझे  
जाते थे—

“पलः पलालो धान्यत्वक् तुषो वृसे कडंगराः” ॥ ११८२ ॥  
( अभिधानचिन्तामणि )

अर्थात्—पल, पल्ल, धान्य का छिलका, तुष और कडंगर ये भूमे  
के नाम है।

‘अज’ नाम में आज बकरा और विष्णु का अर्थ समझा जाता है, किन्तु  
इसके अर्थ स्वर्णं माक्षिक, धातु, पुराने धान्य, जो उगने की शक्ति नष्ट कर  
चुके हों, होते हैं। (शालिग्राम औपथ शब्द सागर)।

ये सब उपर्युक्त उद्धरण देने का आशय यह है कि मांस, गज्जा, अस्त्र  
आदि शब्द जिन प्रकार प्राणियों के अंगों के लिये आते हैं उन्हीं प्रकार  
वनस्पति के अंगों के लिये भी आते हैं। तथा जिन शब्दों का अर्थ हम प्राणी  
समझते हैं, उन शब्दों का प्रयोग वनस्पति और पक्षियों आदि मान  
पदार्थों के लिये भी होना है। ऐसी परिस्थिति में लिखे गये शास्त्रों के  
विषयों के अर्थनिर्णय में विद्वानों द्वारा गल्ती होना असंभव नहीं है।  
यही कारण है कि वेदों, जैनाग्रहों तथा बौद्धपिटकों में आने वाले  
वैयक्तिक या धर्मपदार्थों के अर्थ में आने वाले शब्दों को प्रयोगों तथा  
परिस्थितियों का विचार किए बिना अर्थ का अनुयं करके आज कल के  
कवियत्र विद्वानों ने अनेक प्रकार की विद्वतियां घुमेड़ दी है।

अब हम इस विषय को लम्बा न करके यहाँ पर कुछ ऐसे शब्दों  
की शक्ति देते हैं जिन के अर्थ वनस्पति और प्राणी दोनों होते हैं।



|                   |                   |                 |
|-------------------|-------------------|-----------------|
| राजपुत्र          | राजकुमार          | कल्मीगोरा       |
| वराह              | मूअर              | नागरमोथा        |
| श्वदंष्ट्रा       | कुत्ते की दाढ़    | गोखरू           |
| विप्र             | ब्राह्मण          | पीपल का वृक्ष   |
| जटायु             | पक्षी विशेष       | गुग्गुल         |
| वानरी, मकंटी,     | बन्दरी            | कौंच के बीज     |
| वानरीबीज, कपि     | बन्दर             | कौंच के बीज     |
| मांगफल            | मांस              | बेंगन           |
| कोकिला, कोकिलाक्ष | कोयल, कोयल की आंख | ताल मगाने       |
| हस्तिकर्ण         | हाथी का कान       | लाल एरंड की जड़ |
| त्वक्             | चमड़ी             | छिलका           |
| अस्थि             | हड्डी             | बीज, गूठली      |
| भुजंग             | सांप              | नागकेसर         |
| तरुणी             | जवान स्त्री       | गुलाब           |

### ७—वर्तमान काल में कुछ प्रचलित शब्द

|                    |                                  |                          |
|--------------------|----------------------------------|--------------------------|
| शब्द               | प्राणी वाचक                      | वनस्पतिवाचक              |
| कुक्कुड़ी-कुक्कुड़ | मुर्गी, मुर्गा<br>(पंजाब गुजरात) | भुंटे (उत्तरप्रदेश)      |
| भाजी               | मांस (मुल्तान-मिथ<br>देस)        | रांधा हुआ शाक            |
| गलगल               | गुट्टहार पक्षी                   | बीजारा, फल विशेष         |
| तरकारी             | मांस (उत्तर पंजाब)               | साग, सब्जी<br>(राजस्थान) |
| चील                | चील पक्षी (उत्तरप्रदेश)          | चील शाक की भाजी          |
| गीठहोड़ी           | गिठहरी (उत्तरप्रदेश)             | शाक                      |



अर्थात् — प्रकाश ही अन्नदाता । सूर्यका ही आग अन्न का  
 है अथवा अन्नदाता । ( १२४ ) ही अर्थात् — सूर्यका ही अन्नदाता  
 है, अन्नदाता है । ( १२५ ) ही अन्नदाता । इसका क्या कारण है ? ( १२६ )  
 हे सूर्यदाता । तुम्हारा प्राणम प्रकाश ही प्रकाश का सूर्यदाता है, ( १ )  
 मित्र सूर्यदाता-ममानवयमक २) और प्राण सूर्यदाता । इस में जो  
 मित्र सूर्यदाता है वह प्राण प्रकाश का है, ( १ ) प्राण जन्मा हुआ, ( २ )  
 प्राण में पला हुआ, और ( ३ ) प्राण में भेला हुआ । ये तीनों प्रकार के  
 सूर्यदाता (ममानवयमक मित्र श्रमण निर्गमों को अन्नदाता है । जो प्राण्य  
 सूर्यदाता है, वह ही प्रकाश का है : सूर्यदाता और अन्नदाता  
 इस में जो अन्नदाता-अग्नि आदि सूर्य में निर्जीव नदी हुआ—वह  
 श्रमण निर्गमों को अन्नदाता है । और जो सूर्यदाता (अग्नि आदि में  
 निर्जीव हुआ) है वह ही प्रकाश का है : ( १ ) पृथिवी-दृष्टा करने योग्य,  
 निर्दोष ( २ ) अनेकणीय न दृष्टा करने योग्य-मदोष । इस में जो  
 अनेकणीय है वह श्रमण निर्गमों को अन्नदाता है । जो एकणीय सूर्यदाता है



धान्य मास । उस में जो अयं मास है, वह भी दो प्रकार—“स्वर्णमास और रोप्यमास । यानी चांदी का मास, सोने का मास (एक प्रकार के तोलने के घाट) । ये भी श्रमण निर्ग्रंथों को अभक्ष्य हैं । जो धान्य माप (उड़द) हैं, वे भी दो प्रकार के हैं—शस्त्रपरिणत (अग्नि आदि में अचित्त हुए) और अशस्त्रपरिणत (अग्नि आदि में अचित्त नहीं हुए—सजीव) । इत्यादि जैसे धान्य सरगों के लिये कहा वैसा धान्य माप (उड़द) के लिये भी समझ लेना । यावत्—वह इस हेतु से अभक्ष्य भी है ।

यानी—अग्नि आदि में अचित्त उड़द भी दो प्रकार का है—एवणीय और अनेवणीय (साधु के निमित्त आदि में न रांधा हुआ निर्दोष और साधु के निमित्त से रांधा हुआ सदोष) । इस में जो अनेवणीय है वह श्रमण निर्ग्रंथों को अभक्ष्य है । एवणीय उड़द भी दो प्रकार के हैं: याचित (मांगे हुए) अयाचित (न मांगे हुए) । इन में जो अयाचित रांधे हुए उड़द हैं वे श्रमण निर्ग्रंथों को अभक्ष्य हैं । और जो याचित रांधे हुए उड़द हैं वे भी दो प्रकार के हैं—मिले हुए (प्राप्त), न मिले हुए (अप्राप्त) । इन में जो नहीं मिले ऐसे रांधे हुए उड़द श्रमण निर्ग्रंथों को अभक्ष्य हैं । और जो रांधे हुए मागने पर प्राप्त हो गये हैं, ऐसे निर्दोष उड़द श्रमण निर्ग्रंथों को भक्ष्य (खाने योग्य) है । हे नोमिल ! इस कारण से ‘मास’ भक्ष्य भी है, अभक्ष्य भी है ।

(प्र०) कुलत्था ते भंते! किं भवत्थेया, अभवत्थेया ? (उ०) सोमिला ! कुलत्था भवत्थेया वि अभवत्थेया वि । (प्र०) से केणट्ठेणं जाव अभवत्थेया वि ? (उ०) से नूणं सोमिला ! तं वंभन्नएसु ज्ञपेसु दुविहा कुलत्था पन्नत्ता, तं जहा—इत्थि कुलत्था य घन्नकुलत्था य । तत्थ णं जे ते इत्थि कुलत्था ते ति विहा पन्नत्ता, तं जहा-कुलकन्था इ वा कुलवहुया ति वा कुलमाउया इ वा, ते णं समणाणं निर्गंयाणं-अभवत्थेया । तत्थ णं जे ते घन्नकुलत्था एवं जहा धन्नसरिसवा, से तेणट्ठेणं जाव अभवत्थेया वि । (भगवती शतक १८ उद्देशा १०)





विद्वत्ता के लिए शोभाप्रद नहीं है किन्तु विद्वत्ता को दूषित करने वाला है।

अब हम यहाँ पर 'विवादास्पद' सूत्रपाठ के वास्तविक अर्थ के लिये विचार करें।

१--भगवतीसूत्र का (विचारणीय) मूल पाठ इस प्रकार है :—

'तत्त्वं नं रेवतीणं गाहावदणीणं मम अट्ठाणं दुव्वे कवोय-सरीरा उवरणडिया तेहि नो अट्ठां । अत्तिव से अन्ने पारियासिए मज्जारकडणं कुवकुडमणं तमाहराहि । एणणं अट्ठां ।

(भगवतीसूत्र, दातक १५)

समर्थ शास्त्रज्ञ नवागोटीकाकार आचार्य अभयदेवमूरि द्वारा की गयी इस सूत्रपाठ की टीका तथा इस का अर्थ इसी स्तम्भ ११ के विभाग क-ख अंगों में विस्तृत लिख आये हैं; तथा इस अर्थ की पुष्टि में अणु-म-ड में उनके समकालीन तथा निकट भविष्य में हो गये तीन आचार्यों के उद्धरण भी दे आये हैं। अब यहाँ पर इस पाठ के विवादास्पद शब्दों के वास्तविक अर्थ सम्प्रमाण दिलेंगे।

उन शब्दों के इस स्थान पर सम्स्कृत अथवा अर्धमागधी शब्दकोश के प्रचलित अर्थ लेना उचित नहीं, क्योंकि यहाँ तो वे औपच के रूप में दम्भेमान्ड 'उपयोग' किये गये हैं। अतः इनके अर्थ वैदिकीय शब्दकोशों से लेने उचित है। यदि इन शब्दों के अर्थ वनस्पतिपरक मिल जायें और वे वनस्पतियों इस रंग के निदान के अनुकूल हों तो अक्षय श्रीहारा का लेने का स्थिति। कुछ विद्वानों के लिये यही शोभाप्रद है।

इन शब्दों पर हम आये हैं कि प्राणिजन्तु-मान इस रोग का निदान करने में नहीं हो सकता। वैदिक दम्भेमान्ड संग्रह माया में उपलब्ध हो जाने के लिये विशेष विचारणीय शब्दों के संस्कृत पर्यायवाची शब्दों का ज्ञान लेना भी आवश्यक है।—



९—कापोती—कृष्ण कापोती, श्वेत कापोती वनस्पतियाँ (मुश्रुत सं०)  
कृष्ण कापोती तथा श्वेत कापोती शब्दों से पाठक काली या श्वेत कबूतरों ही समझेंगे। परन्तु वास्तव में ये शब्द किमर्थ के बोधक हैं, इसका खुलासा नीचे दिया जाता है :—

“श्वेतकापोती समूलपत्रा भक्षयितव्या (मुश्रुत संहिता)।

सक्षीरां रोमशां मृद्वीं रसेनेक्षुरसोपमाम्।

एवंलपरसां चापि कृष्णां कापोतीमादिशेत् ॥

कौशिकीं सरितं तीर्त्वा संजयास्तु पूर्वतः।

क्षितिप्रदेशो वाल्मिकेराचितो योजनत्रयम्॥

विज्ञेया तत्र कापोती श्वेता वाल्मिकमूर्धसु॥

(कापोती प्राप्तिस्थान-मुश्रुत सं०)

उपर्युक्त शब्दों से स्पष्ट है कि कपोत तथा कपोत से बने हुए शब्द अनेक प्रकार की वनस्पतियों तथा अन्य पदार्थों के बोधक हैं। कपोत के रंग जैसा हरा सुरमा होने से इसका नाम कपोतांजन कहलाता है। छोटी इलायची का रंग कपोत के सदृश होने से कपोतवर्णा कहलाती है। इसी प्रकार पेठे का रंग भी कबूतर के समान ऊपर से हरा होने से कपोत कहलाता है। अकेले कपोत शब्द के ये अर्थ लिख चुके हैं :—

(१) कपोत = पारापत (एक प्रकार की वनस्पति) (२) पारीस पीपर, (३) पेठा (कुम्भांड), (४) कबूतर पक्षी।

इनके गुण-दोषों का वर्णन वैद्यक ग्रन्थों में इस प्रकार है :—

१—पारापत :—

“पारापतं सुमधुरं रचयत्यग्निवातनुत्” (मुश्रुत संहिता)

२—पारीस पीपर :—

“पारिशो दुर्जरः स्निग्धः कृमिशुक्रकफप्रदः ॥५॥”

फलेऽल्लो मधुरो मूलो, कषायः स्वादुः मज्जकः ॥६॥

(भावप्रकाश-वटाविर्ग)

३—कुम्भाण्ड फल, कोला, सफ़ेद कुम्हेड़ा, पेठा :—



ग्राही, गीतल, रक्त-पित्तदोषनाशक। यदि पका हो तो अग्निवर्धक है।

(४) कबूतर पक्षी का मांस :—

“स्निग्धं ऊष्णं गुद रक्तपित्तजनकं वातहरं च।

सर्वमांसं दातविध्वंसि वृष्यं ॥

अर्थ— मांस स्निग्ध, गरम, भारी तथा रक्तपित्त के विकारों को पैदा करने वाला है, वात को हरने वाला है। मद्य मांस वातहर और वृष्य है।

यहाँ पर “कबोय” शब्द है चार अर्थों में से तीन अर्थ वनस्पतिपरक हैं तथा एक अर्थ मांसपरक है।

भगवान् महावीर स्वामी को रोग थे :—

(१) रक्तपित्त, (२) पित्तज्वर, (३) दाह, (४) अतिसार।

इन रोग को शान्त करने के लिए इन चारों पदार्थों में से छोटा कुष्माण्ड (पेठा) फल ही औषधरूप लिया जा सकता था; क्योंकि इन में ने यही औषध इन रोगों को शान्त करने में समर्थ थी। परापत तथा पारोम पीपर ये दो वनस्पतिपरक औषधियाँ इस रोग को शान्त नहीं कर सकती थी। मांस तो इस रोग को पैदा करने वाला, बढ़ाने वाला है। अतः गेठ की भाँया रेवता श्राविका ने भगवान् महावीर स्वामी के रोग के समनाथ “दो छंटे पेठे के फल ही” संस्कार किये थे, इस में मन्देह को अवकाश नहीं।

प्राचीन चूनि तथा टीकाकारों ने भी “दुधे कबोयमरीरा” का अर्थ “दो छंटे पेठे फल” ही दिया है, यह हम पहले लिख आये हैं।

१. “दुधे कबोयमरीरा”—ये तीन शब्द हैं। मरीरा शब्द ‘कबोय’ में लिपित पुंलिंग वाले शब्द का बोधक है। यदि यह ‘मरीराणि’ (नपुंसक लिङ्ग) शब्द का प्रयोग होता तो इसका अर्थ पक्षीमरीर पर लागू हो सकता था। क्योंकि “नपुंसक शरीर शब्द ही” प्राणी शरीर या मृदु के अर्थ में आता है। किन्तु श्राविका को यह भी अर्थात् नहीं था। अतः कुक्षीर सत् ‘मरीराणि’ का प्रयोग न करते पुंलिंग में “मरीरा” शब्द









अर्थात्—लवंग कटु, तीक्ष्ण, लघु, चक्षुष्म, उष्ण, पाचक रुचिकर । कफ, पित्त, मल नाश करने वाला । तृष्णा (प्यास), वमन, आध्मानवायु, शूल के दर्द को शीघ्र नाश करने वाला । गांभी, श्यान, क्षय आदि रोगों को शीघ्र दूर करने वाला है ।

वैद्यक ग्रंथ आर्यभट्टक- (शंकर दाजी पदे कृत) पृ० ३५९ में लिखा है कि :—

लवंग लघु, कटुवा, चक्षुष्म, रुचिकर, तीक्ष्ण, पाककाले मधुर, उष्ण, पाचक, अग्निदीपक, स्निग्ध, हृद्य, वृष्य तथा विगद है; तथा वायु, पित्त, कफ, आम, क्षय, त्वानी, शूल, अनाहवायु, श्वास, उन्की, वांति, त्रिप, क्षतक्षय, क्षय, तृष्णा, पीनम, रक्तशोष, आध्मान वायु को नाश करता है ।

आर्यभट्टक फुट नोट पृ० ३५९—में लिखा है :—

लवंग पेट की पीड़ा का नाशक, प्यास बन्द करने वाला, उल्टी तथा वायु आदि को दूर करने के लिये औषध रूप में दी जाती है ।

इन नव उद्धरणों से तथा टिप्पणी में दिये गये उद्धरणों से स्पष्ट है कि “मार्जार” शब्द के वनस्पतिपरक अनेक अर्थ होते हैं । वायु तथा

मार्जार—रक्तचित्रक वृक्ष, लालचीता पेड़, चटास,  
(हिन्दी विश्वकोश)

घिङ्गल—हरिताल, यष्टी गैरिक, सिन्धूर्यदावीताक्षयैः समांशकैः ॥  
(वाचस्पति बृहत्संस्कृतानुवितान)

मार्जार—ताक्ष्यं-भूपाल-मार्जार-शलभाः स्युस्त्रिगङ्गवः ॥१२०७॥

मार्जारिणि पिपाचः स्वाद् मारीचां याचकद्वित्रे ॥१३३१॥

(नानाचरित्तमालायां व्यञ्जरकांडः)

चरालक—Varalaka—cloves carissa carissa carandos

aromatic Spice—लवंग, मुगन्धित मसाला ।

(Sanskrit English Dictionary by Sir Monier Monier-Williams).



“मुनिपण्णे हिमो ग्राही मोह-वोषत्रयापहः ।

अविदाही लघु स्वादुः कपायो रुक्षवीपनः ॥

वृष्यो रक्ष्यो ज्वर-श्वास-मोह-कुण्ड-भ्रमप्रणुत् ॥ (भावप्रकाश)

अर्थ—मुनिपण्णक ठण्डा, दस्त रोकने वाला, मोह तथा विद्वेष का नाशक, दाह को शांत करने वाला, हल्का स्वादिष्ट, कपायरसवाला, रुक्ष, अग्नि को बढ़ाने वाला, बलकारक, रुचिकर, और ज्वर, श्वास, कुण्ड तथा भ्रम का नाशक है ।

२—कौटिलीय अर्थशास्त्र में भी कुक्कुट शब्द का प्रयोग वनस्पति के अर्थ में हुआ है । देखिये—

“कुक्कुट—कोशातकी-शतात्रोमूलयुक्तमाहारयमाणो मासेन गौरो भवति ।” (कौटिलीय अर्थशास्त्र पृ० ४१५)

अर्थ—कुक्कुट (विपण्णक-वीपनिगा भाजी), कोशातकी (तुरई), शतावरी इन के मूलों के साथ महीना भर भोजन करने वाला मनुष्य गौर वर्ण हो जाता है ।

३—कुक्कुटः—शाल्मली वृक्षे (सैमल का वृक्ष) (वैद्यक शब्दसिंधु) ।

४—कुक्कुटः—बीजपूरकः (बिजोरा, (भगवतीसूत्र टीका) ।

५—कुक्कुटः—(१) कोपण्डे, (२) कुरंडु, (३) मांवरी (निघण्टु रत्नाकर) ।

६—कुक्कुट—घ'स का उल्का, आग की चिंगारी, शूद्र और निपादन की वर्णसंस्कार प्रजा (जै० स० प्र० क्र० ४३)

७—कुक्कुटी—कुक्कुटी, पूरणी, रक्तकुसुमा, घुणवल्लभी । पूरणी वनस्पति (हंसा निघण्टुसंग्रह)

८—कुक्कुटी—मधुकुक्कुटी=(स्त्री) मातृकुंगवृक्षे जम्बीरभेदे अर्थात्—बीजोरे वृक्ष में से जम्बीर फल (वैद्यक शब्दसिंधु टीका) (राज-वल्लभ)



“अगस्त्या वंगसेनो, मधुशिग्रुमुनिद्रुमः ।

अगस्त्यः पित्तकफजिच्चातुर्थिकहरो हिमः ।

तत्पयः पीनसश्लेष्मपित्तनक्तान्ध्यनाशनम् ॥”

(मदनपाल निघण्टु)

अर्थ :—अगस्त्य वंगसेन, मधुशिग्रु, मुनिद्रुम इन नामों से पहचाना जाता है । अगस्त्य पित्त और कफ को जीतने वाला है । चतुर्थिक ज्वर को दूर करता है और शीतवीर्य है । इस का स्वरस प्रतिश्याय श्लेष्म रात्र्यान्ध्य नाशक है ।

“मुनिशिग्र्वी सरा प्रोक्ता, बुद्धिदा रुचिदा लघुः ।

पाककाले तु मधुरा, तिक्ता चैव स्मृतिप्रदा ॥

त्रिदोषशूलकफहृत्, पाण्डुरोगविपापनुत् ।

श्लेष्म-गुल्महरा प्रोक्ता, सा पयसा रुक्षपित्तला ॥”

(शालिग्राम निघण्टु)

अर्थ—अगस्ति की शिग्रवा शारक कही है, बुद्धि देने वाली, भोजन की रुचि उत्पन्न करने वाली, हल्की, पाक काल में मधुर, तीक्ष्ण, स्मरणशक्ति बढ़ाने वाली, त्रिदोष को नाश करने वाली, शूलरोग, कफरोग को हटाने वाली, विष को नाश करने वाली और श्लेष्म गुल्म को हटाने वाली होती है, परन्तु पकी हुई शिग्रवा रुक्ष और पित्त करने वाली होती है ।

(२) कुक्कुट अर्थात् मुनिपण्णक (चीपनिया भाजी), मधुकुक्कुटो अर्थात् जम्बीर फल आदि है; इनके गुणदोषों का विवरण इस प्रकार है :—

(कुक्कुट) “मुनिपण्णो हिमो प्राज्ञो मोहदोषप्रयापहः ।

अविदाही लघुः स्वादुः कषायो रुक्षदीपनः ॥

बृधो रुच्यो ज्वर-श्याम-मेह कुष्ठ-भ्रम प्रणुन् (भायप्रकाश)

अर्थ—मुनिपण्णक (चीपनिया भाजी) पट्टी, दमन रोखने वाली, मोह तथा त्रिदोष को नाश करने वाली, दाह को शान्त करने वाली, हल्की, स्मृतिदा, कषाय रस वाली, रुक्ष, अग्नि को बढ़ाने वाली, ज्वर तथा रुचि-कारक, ज्वर, श्याम, मेह, कुष्ठ और भ्रम को नाश करने वाली है ।









२—शाल्मली = मेमल वृक्ष

३—मातुङ्ग = बीजोरा (जम्बीर)

४—मुर्गा

(१) यहां “कुक्कुट” का पहला अर्थ—‘मुनिपण्णक’ नामक शाक भाजी है। यह शाक इस रोग में लाभदायक है अवश्य। यदि यहां पर इस शाक की ओपधि लेना मान लें तो यहां पर “मज्जार” का अर्थ ‘खटाश’ लेना चाहिये। क्योंकि ‘खटाश’ डाल कर भाजी का शाक बनाया जाता है। भाजी का शाक ‘दही’ डालकर खट्टा करने का रिवाज सब जानते हैं। अर्थात् खटाश की जगह ‘दही’ लेने से दस्तों की तथा पेचिश की बीमारी में लाभदायक है अवश्य, परन्तु भगवान् महावीर के रोग के लिये हानिकारक थी। क्योंकि भगवान् को पेचिस तथा दस्तों के साथ दाह और पित्तज्वर भी था। ज्वर में दही हानिकारक है। तथा दूसरी बात यह है कि भगवनीमूत्र में भगवान् महावीर ने सिंह मुनि से इस ओपधि के लिये कहा था कि “पहले से तैयार करके जो ओपध रखी है उमे लाना”। सो दही की खटाश डाल कर बनाया हुआ शाक अधिक दिनों तक रख देने में बिगड़ जाता है और खाने लायक नहीं रहता। एवं इस कुक्कुट शब्द के साथ ‘मंसए’ शब्द है। मंसए शब्द का अर्थ है गूदा परन्तु शाक का गूदा नहीं होता। इसलिये यह शब्द शाक भाजी के अर्थ में घटित नहीं हो सकता। इससे फलित होता है कि यह ओपध भगवान् महावीर ने नहीं ली।

(२) दूसरा अर्थ है—‘शाल्मली’ अर्थात् मेमल का वृक्ष होता है। इस वृक्ष का फल होता है तथा इसमें गूदा भी होता है। परन्तु इसका गूदा गर्म होने में इस रोग में लाभदायक नहीं है। अतः यह अर्थ भी यहां घटित नहीं हो सकता।

(३) तीसरा अर्थ—“बीजोरा फल” है। बीजोरा कई प्रकार का होता है। जैसे गयगय, चिहोतरा, मंगतरा, मोठा, जम्बीर, किव फल इत्यादि। यहां पर बीजोरे में “जम्बीर फल” अभीष्ट है, क्योंकि अन्य बीजोरों की अपेक्षा इस रोग के लिये जम्बीर-बीजोरे का पान हुआ



फल पका कर तैयार किये हैं उनको तो आवश्यकता नहीं है (आधाकर्मों से युक्त होने से) । पर उनके वहाँ कुछ दिन पहले मार्जार (लवंग) नामक वनस्पति ने नस्लाग्नि (भावना दिये हुए) बीजों से (जम्बीर) फल के गूदे में तैयार किया हुआ औषधीय पाक (गुरुच्चा) पड़ा हुआ है (जो कि उसने अपने घर के लिये बना कर तैयार करके रखा है) उस की आवश्यकता है । उसे ले आओ ।”

यही अर्थ प्राचीन टीकाकारों तथा चर्चिकारों ने किया है, जो कि उपर्युक्त विवेचन ने सर्वथा ठीक प्रमाणित हो जाना है । अतः—

(१) अध्यापक धर्मानन्द कोसाम्बी इस सूत्रपाठ का अर्थ किया गया है कि :—

उस समय महावीर स्वामी ने मिह नामक अपने शिष्य में कहा—  
“तुम मेडिंग गांव में रेवती नामक स्त्री के पास जाओ । उस ने मेरे लिए दो कबूतर पका कर रखे हैं । वे मुझे नहीं चाहियें । तुम उनसे कहना—  
कल विल्ली द्वारा मारी गयी मुर्गी का मांस तुमने बनाया है, उसे दे दो ।”

पाठक नमज गये होंगे कि कोसाम्बी जी द्वारा स सूत्र पाठ का किया गया अर्थ किनना असंगत, अघटित, अनुचित और भ्रान्तिपूर्ण है । विल्ली द्वारा मारी गयी मुर्गी ऐसी अस्पृश्य तथा घृणित वस्तु को रेवती जैसी वारह व्रत धारिणी उत्कृष्ट श्राविका अपने घर लाकर और उसे पका कर तैयार करे तथा रक्तपित्त, दाह रोग की शान्ति के लिये ऐसी वस्तु का प्रयोग उचित मान लिया जावे, ये गव मान्यताएं अप्रासंगिक, वास्तविकता से दूर तथा कर्पोलकल्पित जचती हैं ।

(२) तथा मंसए और कडए शब्दों का पुल्लिङ्ग प्रयोग भी प्राण्यंग बनाया हुआ निर्ग्रन्थ श्रमणों को लेने के लिये भगवान् महावीर स्वामी ने मना किया है (सौमिल ब्राह्मण तथा भगवान् महावीर स्वामी के सम्वाद में हमने इस बात को स्पष्ट ज्ञात किया है) ऐसी अवस्था में महा श्रमण भगवान् महावीर स्वयं भी इसे ग्रहण नहीं कर सकते थे, क्योंकि कूष्माण्ड पाक उन के लिये बनाया गया था ।













पिष्टान्न आदि से बनाये गये मिष्टान्न भोजन के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। मांस शब्द की व्याख्या करते हुए आचार्य यास्क कहते हैं :—

“मांसं माननं वा मानसं वा मनोऽस्मिन् सोदति वा ।”

अर्थ—मांस कहो, मानन कहो, मानस कहो ये सब एक ही अर्थ के प्रतिपादक पर्याय हैं और ये उस भोजन के नाम हैं; जो आगन्तुक माननीय महमान के लिये तैयार किया जाता था और वह समझता था कि मेरा बड़ा मान किया गया है।

“मन ज्ञाने” इस धातु से मांस शब्द निष्पन्न हुआ है और इसका अर्थ होता है, बड़े आदमी के सम्मान का साधन।

पुरातत्त्वज्ञाता विद्वानों ने आचार्य यास्क का समय ईसा पूर्व नवम शताब्दी निश्चित किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि आज से तीन हजार वर्ष पूर्व के वैदिक साहित्य में मांस शब्द वनस्पतिनिष्पन्न खाद्य के अर्थ में प्रयुक्त होता था।

इस के बाद धीरे-धीरे मधुपर्क और पिष्टकर्म में प्राण्यंग मांस का प्रयोग होने लगा। “बोधायन गृह्यसूत्र” में जो कि ईसा पूर्व छठी शताब्दी की कृति मानी जाती है—यह आग्रह किया गया है कि मधुपर्क में प्राण्यंग मांस अवश्य होना चाहिये यदि पशु मांस न मिले तो पिष्टान्न का मांस तैयार कर काम में लिया जाए।

“आरण्येन वा मांसेन ॥५२॥ न त्वेषामांसोऽर्घ्यः स्यात् ॥५३॥ अशक्ती पिष्टान्नं संसिध्येत् ॥५४॥”

अर्थ—(गो के उत्सर्जन कर देने पर अन्य ग्राम्य पशुओं के अभाव में) आरण्य पशु के मांस में अर्घ्य किया जाय, क्योंकि मांस बिना का अर्घ्य होता ही नहीं। यदि आरण्य मांस की प्राप्ति न कर सकें तो पिष्टान्न में उसे (मांस को) तैयार करे।

उपनिषदों में भी मांस तथा आमिश शब्द प्रयुक्त हुए दृष्टिगोचर होते हैं, परन्तु यहाँ सभी जगह में वनस्पति खाद्य पदार्थ का अर्थ प्रतिपादन किया गया है। उपनिषद् वाक्य कौशल में दिया है—



शब्द का "अच्छा भोजन", यह अर्थ भूला जा चुका था। यही कारण है कि उक्त पदार्थों को आमिष का नाम देकर वर्जित बताया गया है। (मा० भो० मी०, क० वि०)

(२) आयुर्वेद, जैन तथा बौद्ध आदि के प्राचीन ग्रंथों में आमिष, मांस, मत्स्य, आस्थिक आदि शब्दों का प्रयोग वनस्पत्यंगों तथा पक्षिपदों आदि खाद्य पदार्थों के लिये लिया गया मिलता है। इसका विवेचन हम द्वितीय खण्ड में विस्तृत कर<sup>१</sup> आये हैं। तत्पश्चात् धीरे-धीरे इन शब्दों का प्रयोग प्राण्यंगों,

१. पञ्चमाग भगवतीसूत्र में इस चर्चास्पद सूत्र पाठ के वनस्पतिपरक अर्थ के नमान ही आचारांग, दशवैकालिक आदि के चर्चास्पद सूत्र पाठों के भी वनस्पतिपरक अर्थ है। जैनग्रंथों में इनके हुए चर्चास्पद शब्दों के प्राण्यंगों के अतिरिक्त निरामिष अर्थात् प्राचीन भारतीय नादित्य ने मत्स्यमांस यहाँ दिये जाते हैं : ये शब्द अट्ठ, अट्ठिग, आमिष, कटय, मच्छ, मंस, गज आदि हैं।

अष्टमागभी  
१. अट्ठ

संस्कृत  
अस्थि

निरामिषार्थ

बीज, गुठली, लकड़ी

स्थल

लोडिलीय अर्थमांस

पृ० ११८, मुद्रित मद्रिका,

वृद्धारम्भोपनिषद्

वृह० ?

पद्मवना सूत्र

१. जिसमें बीज न बना हो  
अपरिपक्व फल, गुठली वाले  
वेर, आम आदि फल

२. आस्थिक  
आमिष

उत्तराध्ययन ?

पंचा० ६

२. मोक्ष का कारण  
१. आहार, फलादि भोज्य वस्तु

३. आमिष

२. अट्ठिग



संज्ञा की के बाद मूल्य राश्र जो गिष्ट ने निपन्न मिष्टान्न तथा फल गर्भ के अर्थ में प्रयुक्त होता था, इसमें दोरे सूत्र होने लगा। ईना की प्रथम राश्रिदी ने पूर्व निमित्त जेनागमों तथा प्रकीर्णकों में मौस राश्रिदी के लक्षण-यन तथा गह्वान्त्रों के अर्थ में ही प्रयुक्त हुए है। इसके बाद के जैन ग्रंथों में मौस (२) जेनागमों में आये हुए विवादास्पद सूत्र पाठों का वास्तविक अर्थ समझने के लिये यह आवश्यक है कि जेनागमों की रचना का दतिहान भी जाना जाय ताकि स्पष्टार्थ समझने में सुगमता प्राप्त हो।

(२) जेनागमों में आये हुए विवादास्पद सूत्र पाठों का वास्तविक अर्थ समझने के लिये यह आवश्यक

है कि जेनागमों की रचना का दतिहान भी जाना जाय ताकि स्पष्टार्थ समझने में सुगमता प्राप्त हो।

१. ईना गेरिया—कंठर शाखा

गच्छ

गन्ध

३. दु.मोत्सादक वस्तु

१. काँटों वाली वृक्ष शाखा

१०. मत्स्याकृति के बनाये हुए  
उड़द की पीठी के पक्वान्न,  
कोद्व घाग्य के तंदुल,  
ब्रीहि के तंदुल

मादपति अनेन

दति मत्स्य ।

मत्स्यदिका

१. भोज

भोज

अण्ड सक्करा—एक प्रकार की  
सक्कर

१. फलियों का गूदा, फल का  
गूदा, मेवों का गूदा

उत्तराध्ययन ?

आचारांग २, १, ५

क्षेम कुतूहल

कोटिलीय अर्थशास्त्र अ०  
२४ पृष्ठ ११७

पण्ड० २, ४, णाया०

बृहदारण्यकोपनिषद्  
सुश्रुत मंहिता,



समूह अंगवाह्य के नाम से कहे जाते हैं । भगवान् महावीर स्वामी के ग्यारह गणधर थे, उनमें से नवनों भगवान् महावीर की ११७० वर्षों में ही निर्वाण (मोक्ष) को पा गये थे । जिस रात्रि को भगवान् महावीर ने निर्वाण पाया था उसी रात्रि को उनके प्रथम गणधर श्री इन्द्र भूति गौतम को केवल-ज्ञान हो जाने से एक मात्र पाचवें गणधर श्री मुधर्मा स्वामी उस समय भगवान् महावीर के चतुर्विध संघ (माधु-माध्वी, श्रावक-श्राविका) एवं तीर्थ के नेता (संघ नायक आचार्य) सरक्षक बने । जैन श्रमण वाङ्मन्यंतर परिग्रह के गर्वथा त्यागी होने से उन्हें निर्ग्रन्थ (निगूँठ अथवा निगंय) के नाम से संबोधित किया जाता था । ये निर्ग्रन्थचर्या के पालन के लिये अत्यावश्यक कतिपय उपकरणों के बिनाय आने पाम अन्य कोई भी पदार्थ नहीं रखते थे तथा उस समय केवली, गणधर एवं द्वादशांगी (ग्यारह अंग तथा चौदह पूर्वों) का ज्ञाना गौतार्थ जैन श्रमण संघ विद्यमान होने से भगवान् महावीर की वाणी को लिखने की आवश्यकता नहीं समझी गयी । भगवान् महावीर के बाद १७० वर्षों तक श्री भद्रबाहु स्वामी तक द्वादशांगी को निर्ग्रन्थ श्रमणों ने बराबर कंठस्थ याद रखा, इसलिये उस ज्ञान में कमी नहीं आयी । श्री स्थूलभ जो कि आचार्य भद्रबाहु स्वामी के समकालीन तथा उनके बाद उनके पट्टधर आचार्य नियुक्त हुए वे ग्यारह अंगों तथा दस पूर्वों के अर्थ महित जाना एवं चार पूर्वों को मूल सूत्र पाठ से जानते थे । उस समय अनेक अन्य निर्ग्रन्थ भी इतने ज्ञान के जाता थे । यह समय ईसा पूर्व चौथी शताब्दी ठहरना है । आर्य मुहूर्त्ती, आर्य महागिरि, महाराजा नम्प्रति के समय हुए (ई० पू० २२०) । फिर ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी (ई० पू० १७४) में जैन सम्राट् कलिगाधिपति गार्वेल ने अपनी महा विजय के बाद अपनी राजधानी में एक धर्म सम्मेलन किया । उस समय निर्ग्रन्थ श्रमण बहुत संख्या में प्यारे । "यहाँ उन सब ने जैनागमों की वाचना की और उन्हें व्यवस्थित किया ।" ऐसा हाथी मुक्ता के जिल्लावेग से जान होता है । इसी प्रकार बीच-बीच में एक-दो शताब्दियों के बाद निर्ग्रन्थ श्रमण किन्हीं न किन्हीं स्थान पर एकत्रित









होता तो अन्य धर्मावलम्बियों के साहित्य में जैनधर्म के प्रतिस्पर्धी रूप में जैनों पर मांसाहार करने का आक्षेप अवश्य पाया जाता। परन्तु यह बड़े गौरव का विषय है कि जैनेतर साहित्य में जैनों पर इस आक्षेप का सर्वथा अभाव है। मेरे एक मित्र जो एक लब्धप्रतिष्ठ विद्वान हैं लेखक, वक्ता तथा धर्मोपदेशक हैं उन्होंने इस विषय के लिये यह तर्क किया—“संभव हो सकता है कि जैन साहित्य जैनेतर विद्वानों के हाथ में न जा पाया हो, इसलिए हो सकता है कि वे ऐसा आक्षेप जैनों पर न कर पाये हों” उनकी यह दलील कोई युक्तिमंगत प्रतीत नहीं होती, क्योंकि यह कभी संभव नहीं हो सकता कि जैन साहित्य जैनेतर विद्वानों के हाथ में न गया हो। यदि थोड़ी देर के लिये ऐसा मान भी लिया जाय तो भी बौद्धिक, पौराणिक, जैन तथा बौद्ध साहित्य का अवलोकन करने में पता चलता है कि अनेक निर्ग्रन्थ श्रमण जैनधर्म का त्याग कर अन्य धर्म सम्प्रदायों में जा मिले। अनेकों ने निर्ग्रन्थ श्रमण की चर्चा का त्याग कर अपने नवीन सम्प्रदायों की स्थापना भी की। जब वे जैन धर्मोपामक थे तब उन्होंने जैनागमों का अभ्यास तो अवश्य ही किया होगा। इसका यह मतलब हुआ कि वे जैनागमों तथा निर्ग्रन्थाचारों विचारों में पूर्णरूपेण परिचित थे, ऐसा स्पष्ट सिद्ध होता है। यदि जैनागमों तथा जैन आचार-विचारों में किंचित मात्र भी माम मल्लकी आदि अभक्ष्यभक्षण का वर्णन अथवा प्रचलन होता तो वे जैनधर्म के प्रतिपक्षी रूप में जैनों पर अवश्य आक्षेप करने पाये जाते।

(७) निर्ग्रन्थ (जैन) श्रमणों का आचार जनता के समक्ष था, क्योंकि जैन मुनि आहार आदि मत्ता गृहस्थों के वही से ही ले लेते थे एवं लेते हैं। यदि वे कदाचित् अनिवार्य अवस्था में भी प्राण्यंग मांस-मत्स्यादि का भक्षण करने तो जैनेतर साहित्य में जैनों पर सामाहार करने का आक्षेप अवश्य पाया जाता। ऐसा न होना ही बड़ा सिद्ध करता है कि निर्ग्रन्थ आचार-विचार में प्राण्यंग मांसादि भक्षण की किविश्वास भी अस्वीकृत नहीं।

(८) निर्ग्रन्थ बृद्ध जमरुद्ध, मांसाहार से जीवों को मारने की अपेक्षा













श्रमण भगवान् महावीर के धर्मप्रचार से भी लाखों की संख्या में गृहस्थों ने जैन धर्म स्वीकार कर लिया था और वे बारह व्रतवारी श्रमणोंपासक बन चुके थे । जिस से उस समय ये निरामिषभोजी भी सर्वत्र विद्यमान थे ।

ऐसी अवस्था में भिक्षा पर निर्भर रहने वाले जैन निग्रंथ श्रमणों को मांस रहित भिक्षा मिलना असंभव मानना कहां तक उचित है ? पाठक स्वयं सोच सकते हैं ।

व्यक्ति दो कारणों से झूठ बोलता है । अज्ञानवश अथवा राग-द्वेषवश । सो कोसाम्ब्री जी की उपयुक्त धारणा सत्य से कोसों दूर होने के कारण इन दो कारणों में से किसी एक कारण का शिकार अवश्य हुई है । अधिक क्या लिखें ।

(१७) मनुष्य का उसके विचारों के साथ गहरा सम्बन्ध है । विचारों के अनुसार ही आचार होता है । जो यह मानता है कि आत्मा नहीं है, परलोक नहीं है, परमात्मा नहीं है उसका आचार प्रायः भोग-प्रधान रहता है । जो यह मानता है कि आत्मा है, परलोक है, आत्मा अपने किये हुए शुभाशुभ कर्मों के अनुसार सुख-दुःख आदि फल को भोगता है, उसका आचार भोगप्रधान न होकर इसके विपरीत त्यागमय होना है । अतः विचारों का मनुष्य के ऊपर गहरा प्रभाव पड़ना है । इसलिए किसी के आचार-विचार को जाने बिना उस के विषय में सम्यक् निर्णय नहीं किया जा सकता । महात्मा बुद्ध मृतमार्ग में जीव नहीं मानते थे, किन्तु निर्गुण नादपुत्र (श्रमण भगवान् महावीर) सब प्रकार के राक्षस मांस को तम जीवों का पुंज मानते थे । इसलिए जब हम श्रमण भगवान् महावीर के जीवन पर दृष्टिपान करते हैं तो जान होता है कि वे दीक्षा लेने से पहले गृहस्थाश्रम में ही मत्तिन आहार के सब प्रकार से त्यागी हो चुके थे और निग्रंथ श्रमण की दीक्षा लेने के बाद जब वे स्वंत्र-सर्वदमो हो चुके थे तब उन्होंने मोक्षोप कर्म को सर्वथा नाश कर दिया था । उस समय उन्हें अपने शरीर पर किये-मात्र भी मोक्ष नहीं



श्रमण भगवान् महावीर स्वामी तो कषाय अजानादि अठारह दोषों रहित सर्वज्ञ सर्वदर्शी थे, इसलिये कदाचिन् इनके रोग में मांसाहार गुणकारी भी होता तो भी अहिंसा के आदर्श उपदेशक तथा कल्याण के अवतार श्रमण भगवान् महावीर कभी भी ऐसे अभक्ष्य पदार्थों को स्वीकार करें यह बुद्धिगम्य तथा श्रद्धागम्य नहीं है । (५) उन्हें तो अपनी देह पर भी ममता नहीं थी । (६) उन्हें यह भी ज्ञान था कि इस रोग में मुर्गे का मांस घातक है । (७) उन्हें उनके रोग शमन के लिये वनस्पतिनिष्पन्न निर्दोष तथा प्रामुक्त अनुकूल औषधि मुख्यतः प्राप्य भी थी । ऐसी परिस्थिति में श्रमण भगवान् महावीर का मांसाहार ग्रहण करना कदापि संभव नहीं है ।

निगमंठ नायगुप्त (श्रमण भगवान् महावीर) अपने सिद्धान्त के विरुद्ध जाने वाली, प्राणों की घातक, रोग की प्रकृति के प्रतिकूल तथा अभक्ष्य, महापापमूलक वस्तु अपने जिन्य सिंह मुनि द्वारा मंगा कर ग्रहण करें, यह बात ममजदार व्यक्ति के गले कदापि नहीं उतर सकती ।

(१२) रेवती श्राविका जो घनाढ्य गृहस्थ की स्त्री थी, बहुत ही ममजदार और बुद्धिमती थी और बारह व्रत धारिणी भी थी । ऐसी उत्कृष्ट श्राविका ऐसा उच्छिष्ट मांस कैसे राख सकती थी ? राख कर बागी क्यों रखे ? फिर भगवान् के लिये दे । ये गव बातें कैसे संभव हो सकती हैं ?

जो स्वयं रंघे वह गाती भी होगी तब वह व्रतधारिणी कैसे हुई ? मांस खाने वाली रेवती ऐसे बागी मांस का आहार दान करने से देव-गति प्राप्त करे तथा तीर्थकरनामकम् उत्तर्जन करे, यह कैसे संभव हो सकता है ? शास्त्रकारों ने 'तृतीयं आगतं' में कहा है कि इस मांसदान के प्रभाव ने रेवती श्राविका देवगति में गयी और आगामी जीर्णोत्थान में मनुष्यरूप प्राप्त करेगी और आत्मा तीर्थकर हो कर निर्वान मोक्ष का प्राप्त करेगी । अब हमने यह स्पष्ट है कि ममजदारों द्वारा बारह व्रत धारिणी श्राविका ने जो कदापि प्राप्य मांस खाया



शब्द अनेकार्थक बन जाते हैं तथा अनेकार्थक एकार्थक बन जाते हैं। अनेक शब्दों तथा लिपियों में एक दम परिवर्तन भी हो जाता है। जो शब्द आज किसी विशेष अर्थ में प्रयुक्त होता है वह शब्द कालांतर में सर्वथा भिन्न अर्थ में प्रयुक्त होने लगता है। सां आज से पच्चीस सौ वर्ष पहले मगधदेश में बोली जाने वाली भाषा आज की भाषा से मेल कैसे पा सकती है। अतः मुज एवं निष्पक्ष विद्वानों को चाहिये कि वे किसी भी सूत्र पाठ का अर्थ करते समय देश, काल, परिस्थिति, आचार, विचार आदि को लक्ष्य में रखते हुए उन के अनुकूल अर्थ करके अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय दें। यही उन के लिये शोभाप्रद है। किन्तु प्राचीन काल के एकार्थक शब्दों को अनेकार्थक बना कर अर्थ का अनर्थ करने की कृपा न करें।

( २२ ) वर्तमान समय में विवादास्पद सूत्रपाठों को निकालने का विचार भी ठीक प्रतीत नहीं होता। कारण यह है कि उस प्राचीन समय के सूत्रपाठों को निकाल देने अथवा उन शब्दों को बदल देने से जैनागमों की प्राचीनता एवं प्रामाणिकता ही समाप्त हो जायगी। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की मौजूदगी में गणधरों द्वारा संकलित किये गये ये प्राचीन आगम जब उन के ९८० वर्ष बाद देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के नेतृत्व में लिपिबद्ध कर पुस्तकारूढ़ किये गये थे उस समय इस हजार वर्ष के अन्तर में भाषा, शब्दों, अर्थों के अनेकविध परिवर्तन भी अवश्य हो चुके थे, उस समय लोग प्राचीन अर्थों को भूलने भी लगे थे, बाहर से आने वाली अनेक जातियों के भारत में आकर बसने तथा उन के शासनकाल में उनकी भाषा राज्यभाषा के रूप में प्रचार पा जाने से प्रत्येक भाषा में शब्दों का आदान-प्रदान होने से उस समय की भाषाओं में अनेक प्रकार के परिवर्तन भी हो चुके थे। आज की हिन्दी, गुजराती, बंगाली आदि भारतीय भाषाओं का जब हम बारहवीं-तेरवीं शताब्दी की भाषाओं से मेलान करते हैं तो इनके अन्तर का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है। इसी प्रकार आज से पच्चीस सौ वर्ष पहले "आम, आमगंध शब्द का अर्थ प्राण्यंग का कच्चा-





